# कल्याण



'राम-सियाकी जोड़ी'

मूल्य १० रुपये





भगवती श्रीसरस्वती

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



होइ पंगु गिरिबर मूक गहन। बाचाल चढ़इ जासु कृपाँ सो कलि दयाल द्रवउ दहन॥ सकल मल

वर्ष ९६ गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, फरवरी २०२२ ई० पूर्ण संख्या ११४३

### भगवती श्रीसरस्वती

हंसारूढा हरहिसतहारेन्दुकुन्दावदाता वाणी मन्दिस्मततरमुखी मौलिबद्धेन्दुलेखा।

वाणी मन्दिस्मिततरमुखी मौलिबद्धेन्दुलेखा। विद्यावीणामृतमयघटाक्षस्त्रजा दीप्तहस्ता

श्वेतताब्जस्था भवदिभमतप्राप्तये भारती स्यात्॥

'जो हंसपर विराजमान हैं, शिवजीके अट्टहास, हार, चन्द्रमा और कुन्दके समान उज्ज्वल वर्णवाली हैं तथा वाणीस्वरूपा हैं, जिनका मुख मन्द-मुसकानसे सुशोभित है और मस्तक चन्द्ररेखासे विभूषित है तथा जिनके हाथ पुस्तक, वीणा, अमृतमय घट और अक्षमालासे उद्दीप्त हो रहे हैं, जो श्वेत कमलपर आसीन हैं,

वे सरस्वतीदेवी भक्तोंकी अभीष्ट-सिद्धि करनेवाली हों।' [ श्रीदक्षिणामूर्तिसंहिता ]

राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।। (संस्करण १,८०,०००) कल्याण, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, फरवरी २०२२ ई० विषय-सूची पृष्ठ-संख्या विषय पुष्ठ-संख्या विषय १७- विरह-सागरका चतुर नाविक ( पं० श्रीगोविन्दप्रसादजी मिश्र) ..... २५ १ - भगवती श्रीसरस्वती ...... ३ १८- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य २- प्रेमी पाठकोंसे नम्र-निवेदन...... ५ श्रीगणेशदासंजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)......२९ १९- आध्यात्मिक जीवन ४- भगवती श्रीसीताजी [ **आवरणचित्र-परिचय** ]......७ ५- परमात्मा परम दयालु हैं [ **अनमोल वचन** ] (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीदयानन्द गिरिजी महाराज) ...... ३० २०- जीवन जीना और ढोना (श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला) ....... ३१ (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)......८ २१ - मनोमय कोशका स्वरूप एवं साधना-पद्धतिकी सार्वभौमिकता ६ - पंचमहायज्ञ (डॉ॰ श्रीविनोदजी शर्मा)......३३ (गोलोकवासी सन्त श्रीकेशवरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज) ...... ९ २२- पर्यावरणप्रेमी सन्त श्रीजाम्भोजी महाराज [ संत-चरित ] ७- 'ये नववर्ष हमें स्वीकार नहीं' [ कविता ] (श्रीबद्रीनारायणजी विश्नोई, एम०ए०, जे०आर०एफ०) ..... ३६ (श्रीरामधारी सिंहजी 'दिनकर') ........................ १० २३- ब्रजक्षेत्रका प्राचीन तीर्थ-वटेश्वर [ तीर्थ-दर्शन ] ८- प्रेमका स्वरूप (श्रीजगन्नाथजी लहरी) ...... ३९ (नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)..........११ २४- सन्त माधवदासकी गोभक्ति [ **गो-चिन्तन** ]......४२ ९- जब अपवित्र विचार घेरते हैं! (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)..........१३ २५- सभ्यता[ **बोध-कथा**] .....४२ १०- संयोगमें वियोगका दर्शन [ साधकोंके प्रति ] २६- सुख-दु:ख**ि सत्संग सन्तोंके संग**ी ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ....... १७ श्रीशरणानन्दजी महाराजके प्रवचनोंसे संकलित] ......४३ ११- नन्द-देहरीमें अटका ब्रह्म—एक अद्भुत लीला......१८ १२- पंजाब-केसरीकी उदारता[ **बोध-कथा** ] ...... १९ २७- सुभाषित-त्रिवेणी ......४४ १३- 'निन्दक नियरे राखिये'( श्रीताराचन्दजी आहूजा)...... २० २८- व्रतोत्सव-पर्व **[ चैत्रमासके व्रत-पर्व** ]......४५ २९- कपानुभृति .....४६ १४- 'न मे भक्त: प्रणश्यित' ...... २२ ३० - पढो, समझो और करो ......४७ १५- मान और अभिमान ( श्रीगणेशलालजी, कर्णप्रवासी ) ...... २३ ३१ - मनन करने योग्य......५० १६- मनुष्य-जन्मको सार्थकता (श्रीसलिलजी पाण्डेय) ...... २४ चित्र-सूची २- भगवती श्रीसरस्वतीजी......( ,, ) ...... मुख-पृष्ठ ४- वसिष्ठजीका भरतसे राज्य ग्रहण करनेका अनुरोध......( ,, ५- सन्त श्रीजाम्भोजी महाराज .....( 3 ξ ६ - ब्रजक्षेत्रका प्राचीन तीर्थ वटेश्वर ......( जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥ जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ पंचवर्षीय शुल्क

### एकवर्षीय शुल्क विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय ₹ २५० विदेशमें Air Mail ) वार्षिक US\$ 50 (` 3,000) Us Cheque Collection

रमापते ॥

₹ १२५०

पंचवर्षीय US\$ 250 (` 15,000) Charges 6\$ Extra

# संस्थापक - ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक-प्रेमप्रकाश लक्कड

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website: gitapress.org e-mail: kalyan@gitapress.org £ 09235400242 / 244

सदस्यता-शुल्क —व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता हेत् gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें। अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा book.gitapress.org पर नि:शुल्क पढें।

```
प्रेमी पाठकोंसे नम्र-निवेदन
संख्या २ ]
हरे
                                        हरे
                                                           हरे
                                                                        हरे
                                                                                                         हरे।
              हरे
                                              हरे ।
                                                                                                   हरे
       राम
                    राम
                           राम
                                 राम
                                                                 राम
                                                                              राम
                                                                                     राम
                                                                                            राम
 हरे
      कष्ण
              हरे
                   कष्ण
                          कष्ण
                                  कष्ण
                                         हरे
                                               हरे ॥
                                                           हरे
                                                                 कष्ण
                                                                        हरे
                                                                             कृष्ण
                                                                                     कष्ण
                                                                                            कष्ण
                                                                                                    हरे
                                                                                                         हरे॥
 हरे
                                                                                                         हरे।
       राम
                                     प्रेमी पाठकोंसे नम्र-निवेदन
 हरे
                                                                                                   हरे
                                                                                                         हरे॥
      कृष्ण
 हरे
       राम
                   आप सब सुहृद् पाठकोंके सहयोगसे अब 'कल्याण' सफलतापूर्वक अपनी यात्राके
                                                                                                   हरे
                                                                                                         हरे।
 हरे
                                                                                                         हरे॥
      कृष्ण
                                                                                                    हरे
              ९६वें वर्षमें प्रवेश कर गया है। हम शताब्दी वर्षकी ओर सतत अग्रसर हैं। सौभाग्यसे
 हरे
                                                                                                         हरे।
       राम
             कल्याणको विरक्त साधु-सन्तों एवं कर्मनिरत धर्मशील सद्गृहस्थजनों—सभीका स्नेह एवं
 हरे
                                                                                                    हरे
                                                                                                         हरे॥
      कृष्ण
             सहयोग सदैव मिलता रहा है।
हरे
                                                                                                   हरे
                                                                                                         हरे।
       राम
                   'कल्याण' एक आध्यात्मिक पत्रिका है। इसमें साधकोपयोगी ज्ञानयोग, भक्तियोग,
                                                                                                    हरे
 हरे
      कृष्ण
                                                                                                         हरे॥
 हरे
                                                                                                   हरे
             कर्मयोग, राजयोग इत्यादि विषयक साधन-सामग्रीके साथ-साथ सांस्कृतिक, पारिवारिक एवं
                                                                                                         हरे।
       राम
 हरे
                                                                                                    हरे
                                                                                                         हरे॥
      कृष्ण
             सामाजिक जीवन-मुल्योंको पुष्ट करनेवाली सामग्री देनेका प्रयास रहता है।
 हरे
                                                                                                   हरे
                                                                                                         हरे।
       राम
                   हमारा सदैव यह भी प्रयास रहा है कि हम अपने मूल सिद्धान्तोंपर दृढ़ रहते हुए
                                                                                                    हरे
 हरे
                                                                                                         हरे॥
      कृष्ण
             सभी आयु-वर्गके पाठकोंकी मनोवांछित सामग्रीको प्रामाणिक एवं सुरुचिपूर्ण स्वरूपमें
                                                                                                         हरे।
 हरे
                                                                                                   हरे
       राम
             प्रस्तुत करें। देश-काल-परिस्थिति-भाषा एवं व्यवहारमें युगानुरूप परिवर्तनके कारण
                                                                                                    हरे
 हरे
                                                                                                         हरे॥
      कृष्ण
 हरे
             अभिरुचि एवं आवश्यकताओंमें भी परिवर्तन स्वाभाविक है। कल्याणके पाठकोंकी भी
                                                                                                   हरे
                                                                                                         हरे ।
       राम
 हरे
                                                                                                         हरे॥
                                                                                                    हरे
      कृष्ण
             इस समय तीसरी एवं चौथी पीढ़ी आ चुकी है इस कारण वर्तमानमें पाठकों, विशेषकर
 हरे
                                                                                                   हरे
                                                                                                         हरे।
       राम
             युवा-पीढीके पाठकोंकी अभिरुचिको जानना नितान्त आवश्यक प्रतीत हो रहा है। यदि
 हरे
                                                                                                    हरे
                                                                                                         हरे॥
      कृष्ण
             हम उनके मनोभावोंको समझ सकें, तो पत्रिका सभीके लिये अधिक उपयोगी एवं
 हरे
                                                                                                   हरे
                                                                                                         हरे।
       राम
             सुरुचिपूर्ण सिद्ध हो सकेगी।
 हरे
                                                                                                    हरे
      कृष्ण
                                                                                                         हरे ॥
                   हमारे जिन धर्मप्राण पाठकोंका परम्पराके प्रति सम्मान है, शास्त्रोंमें निष्ठा है तथा
 हरे
                                                                                                   हरे
                                                                                                         हरे।
       राम
 हरे
                                                                                                    हरे
                                                                                                         हरे॥
             जो कल्याणको अपनी ही पत्रिका मानते हैं, उनके विचार हमारे लिये अत्यन्त मुल्यवान्
      कृष्ण
 हरे
                                                                                                   हरे
      राम
                                                                                                         हरे।
             हैं। उन सभीसे हमारा विनम्र निवेदन है कि वे हमें सुझाव दें कि 'कल्याण'में—
 हरे
                                                                                                    हरे
                                                                                                         हरे॥
      कृष्ण
                   🕸 किस प्रकारके लेख आदि आपको विशेष प्रिय लगते हैं?
                                                                                                   हरे
 हरे
                                                                                                         हरे ।
       राम
                   🕸 कौन-से स्तम्भ आपको रुचिकर लगते हैं?
                                                                                                    हरे
 हरे
                                                                                                         हरे॥
      कृष्ण
                   🕏 कौन-से नये स्तम्भ आप पत्रिकामें आवश्यक समझते हैं?
                                                                                                   हरे
                                                                                                         हरे।
 हरे
       राम
 हरे
                   🕏 किस प्रकारकी सामग्री आपको अनुपयोगी प्रतीत होती है?
                                                                                                    हरे
                                                                                                         हरे॥
      कृष्ण
 हरे
                                                                                                   हरे
       राम
                                                                                                         हरे।
                   🕸 किन विषयोंपर आप विशेषांक प्रकाशनकी आवश्यकता समझते हैं?
 हरे
                                                                                                    हरे
                                                                                                         हरे॥
      कृष्ण
                   🕸 किस प्रकारके चित्र आप कल्याणमें देखना चाहते हैं?
 हरे
                                                                                                   हरे
                                                                                                         हरे।
       राम
                   🕏 पत्रिकाके मूल सिद्धान्तोंको छोडे बिना आप इसमें क्या परिवर्तन चाहते हैं ?
                                                                                                    हरे
 हरे
                                                                                                         हरे॥
      कृष्ण
हरे
                   🕸 इसके अतिरिक्त भी अन्य कोई सुझाव हो, तो लिखें।
                                                                                                   हरे
                                                                                                         हरे।
       राम
 हरे
                   आपके सुझाव हमारे लिये अत्यन्त मूल्यवान् हैं, कृपया नीचे लिखे पतेपर अपने
                                                                                                    हरे
                                                                                                         हरे॥
      कृष्ण
 हरे
       राम
                                                                                                         हरे ।
             सुझाव भेजकर हमें अनुग्रहीत करें। हमें विश्वास है कि आपका सहयोग एवं स्नेह पूर्वकी
 हरे
                                                                                                   हरे
                                                                                                         हरे॥
      कृष्ण
              भाँति प्राप्त होता रहेगा।
                                                                                                         हरे ।
 हरे
                                                                                                   हरे
       राम
                                                                                      सम्पादक
                                                                                                   हरे
 हरे
                                                                                                         हरे ॥
      कृष्ण
              पत्राचारहेत् पता—
 हरे
                                                                 फोन: (०५४२) २३३३४७२
                                                                                                         हरे।
       राम
 हरे
                                                                                                         हरे॥
             कल्याण सम्पादकीय विभाग
      कृष्ण
                                                                                                    हरे
                                                                    मोबाइल : ९८३९९००३४८
 हरे
                                                                                                   हरे
                                                                                                         हरे ।
       राम
              सी.के. १७/१ सुड़िया, वाराणसी-२२१००१
                                                                 e-mail:gpsv.vns@gmail.com
 हरे
      कृष्ण
                                                                                                         हरे॥
 हरे
              हरे
                    राम
                                        हरे
                                              हरे।
                                                                        हरे
                                                                                                         हरे।
                           राम
                                  राम
                                                           हरे
                                                                              राम
                                                                                                   हरे
       राम
                                                                 राम
                                                                                     राम
                                                                                            राम
 हरे
                                                                                                         हरे॥
              हरे
                   कृष्ण
                                         हरे
                                               हरे॥
                                                                 कृष्ण
                                                                        हरे
                                                                             कृष्ण
                                                                                            कृष्ण
                                                                                                    हरे
      कृष्ण
                          कृष्ण
                                  कृष्ण
                                                                                     कृष्ण
```

कल्याण याद रखों — कोई भी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति संतुष्ट नहीं हो और किसी दूसरी परिस्थितिकी आशा करते हो तो तुम्हें कभी भी संतोष होगा तुम्हें शान्ति नहीं दे सकती, तुम्हारा मनोरथ पूर्ण नहीं कर सकती, तुम्हें सुखी नहीं बना सकती, यदि तुम ही नहीं और न कभी तुम चित्तसे शान्तिका अनुभव भगवान्के मंगलमय विधानके अनुसार प्राप्त परिस्थितिका करोगे। सदुपयोग करके उससे लाभ नहीं उठाते। याद रखो-संसारमें कोई भी वस्तु, व्यक्ति या याद रखो-प्राप्त परिस्थितिका सद्पयोग यही परिस्थिति ऐसी है ही नहीं, जो सर्वथा पूर्ण हो, है कि उसमें भगवानुकी कृपाका अनुभव करो, उसमें जिसमें अभाव न हो। तुम जिस किसी भी वस्तु,

अपना मंगल देखो और उससे लाभ उठाओ। यह निश्चय करो कि सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, मेरे परम सृहृद्, न्यायकारी और दयालू भगवानुने मेरे कर्मोंको देखकर जो कुछ भी मेरे लिये विधान किया है, निश्चय ही मेरे लिये उसमें परम मंगल निहित है। याद रखो-भगवान्ने तुम्हारे लिये जो कुछ भी परिस्थिति दी है, यदि तुम उससे लाभ उठाना चाहो तो प्रत्येक परिस्थिति तुम्हारे लिये शुभ और

मंगलमयी हो सकती है। यदि तुम्हें भगवान्ने प्राणी-पदार्थ दिये हैं तो समझो कि तुम्हें सेवा करनेका अवसर दिया है। तुम उन वस्तुओंके ट्रस्टी हो, मालिक नहीं; उनकी सँभाल रखना, रक्षा करना और जहाँ, जब आवश्यकता हो वहाँ, तब यथायोग्य व्यवस्थापूर्वक उन्हें मालिककी सेवामें लगाते रहना

तुम्हारा कर्तव्य है। तुम यदि अपनेको उन वस्तुओंका स्वामी न मानकर उन्हें प्रभुकी सेवामें लगाते हो तो उनका सद्पयोग करते हो। इसी प्रकार यदि तुम्हारे पाससे वस्तुएँ चली गयी हैं तो समझो कि प्रभुने दया करके तुमको मोहमें फँसानेवाली स्थितिसे बचा लिया है, उन्होंने तुमपर बडी ही कुपा की है; और कृतज्ञ हृदयसे प्रभुका स्मरण करते हुए तथा संतोष

और सुखका अनुभव करते हुए इस परिस्थितिसे

लाभ उठाओ।

व्यक्ति या परिस्थितिको प्राप्त करोगे, जिससे अपनी मनोरथसिद्धि मानोगे, वही नये-नये अभावोंको और उनकी पूर्तिके लिये नयी-नयी वस्तु, व्यक्ति या

परिस्थितिकी अपेक्षा और आशाको लेकर तुम्हारे

आशा-प्रतीक्षामें रहोगे; परंतु आशा-प्रतीक्षाकी पूर्तिका

आयेगी और तुम्हारी पराधीनताको,

िभाग ९६

परमुखापेक्षिताको और भी बढा देगी। तुम्हें नयी-नयी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थितियोंकी आशाकी फाँसीमें बँधना पड़ेगा और उनकी चाहे जितनी गुलामी करनेपर भी कहीं भी कभी भी उनसे तुम्हें तृप्ति, संतोष, शान्ति और सुख नहीं मिलेगा। तुम दिन-रात उनकी

प्रसंग आगे-से-आगे टलता जायगा, दूर-से-दूर होता चला जायगा। याद रखों—किसी भी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थितिमें शान्ति-सुख है ही नहीं, वे तो तुम्हारे अन्दर हैं, जो किसी दूसरी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थितिकी आशाका त्याग करके प्रभुके द्वारा दी हुई वर्तमान परिस्थितिका

सद्पयोग करनेपर स्वयं प्रकट होते हैं।

बहती हुई वस्तु, व्यक्ति या परिस्थितिपर विश्वास करता है, वह कभी भी सच्ची शान्ति और सुखका मुख नहीं देख सकता। वह सदा वंचित ही रहता Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

करके प्रतिक्षण बदलनेवाली तथा मृत्युके प्रवाहमें

याद रखो-जो मनुष्य भगवान्पर विश्वास न

भगवती श्रीसीताजी संख्या २ ] भगवती श्रीसीताजी आवरणचित्र-परिचय— भारतीय देवियोंमें सती शिरोमणि भगवती श्रीसीताका रखकर वापस लौटे। सीताजीका स्वयंवर आरम्भ हुआ। स्थान सर्वोत्तम है। स्त्रीके शील और धैर्यकी तो श्रीसीताजीके देश-विदेशके राजा, ऋषि-मुनि, नगरवासी सभी अपने-चरित्रमें पराकाष्ठा है। यही कारण है कि भारतीय साहित्यके अपने नियत स्थानपर आसीन हुए। श्रीराम और लक्ष्मण अधिकांश पृष्ठ श्रीसीताजीके धवल चरित्रके आज भी भी श्रीविश्वामित्रजीके साथ एक ऊँचे आसनपर विराजमान साक्षी बने हुए हैं। इतिहास-पुराणसे लेकर ग्राम्य गीतोंतकमें हुए। भाटोंने महाराज जनकके प्रणकी घोषणा की। श्रीसीताजीकी समानरूपसे प्रतिष्ठा हुई है। शिवजीके कठोर धनुषने वहाँ उपस्थित सभी राजाओंके प्राचीन कालमें मिथिलापुरीमें सीरध्वज जनक नामके दर्पको चुर-चुर कर दिया। अन्तमें श्रीरामजी विश्वामित्रकी एक प्रसिद्ध धर्मात्मा राजा राज्य करते थे। वे शास्त्रोंके आज्ञासे धनुषके समीप गये। उन्होंने मन-ही-मन गुरुको प्रणाम करके बड़े ही लाघवसे धनुषको उठा लिया। एक ज्ञाता, परम वैराग्यवान् तथा ब्रह्मज्ञानी थे। एक बार राजा बिजली-सी कौंधी और धनुष दो टुकड़े होकर पृथ्वीपर जनक यज्ञके लिये भूमि जोत रहे थे। भूमि जोतते समय हलका फाल एक घडेसे टकराया। राजाने वह घडा आ गया। प्रसन्नताके आवेग और सिखयोंके मंगलगानके बाहर निकलवाया। उससे राजाको अत्यन्त ही रूपवती साथ सीताजीने श्रीरामके गलेमें जयमाला डाली। महाराज कन्याकी प्राप्ति हुई। राजाने उस कन्याको भगवान्का दशरथको जनकका आमन्त्रण प्राप्त हुआ। श्रीरामके दिया हुआ प्रसाद माना और अपनी औरस पुत्रीकी भाँति साथ उनके शेष तीनों भाई भी जनकपुरमें विवाहित हुए। बड़े ही लाड़-प्यारसे उसका लालन-पालन किया। उस बारात विदा हुई तथा पुत्रों और पुत्रवधुओंके साथ कन्याका नाम सीता रखा गया। जनककी पुत्री होनेके महाराज दशरथ अयोध्या पहुँचे। कारण वह जानकी भी कहलाने लगी। सीता शुक्लपक्षके श्रीरामको राज्याभिषेकके बदले अचानक चौदह चन्द्रमाकी भाँति दिनों-दिन बढने लगी। शरीरके ही साथ वर्षका वनवास हुआ। सीताजीने तत्काल अपने कर्तव्यका रूप, लावण्य और गुणोंकी भी वृद्धि होने लगी। निश्चय कर लिया। श्रीरामके द्वारा अयोध्यामें रहनेके धीरे-धीरे जानकीजी विवाहके योग्य हो गयीं। आग्रहके बाद भी सीताजीने सभी सुखोंको तृणके समान त्याग दिया और वे श्रीरामके साथ वन गयीं। सीताजी महाराज जनकने धनुष-यज्ञके माध्यमसे उनके स्वयंवरका आयोजन किया। निमन्त्रण पाकर देश-देशके राजा वनमें हर समय श्रीरामको स्नेह और शक्ति प्रदान करती मिथिलामें आये। महर्षि विश्वामित्र भी श्रीराम और हैं। श्रीरामका अयन (रामायण) महर्षि विश्वामित्रकी लक्ष्मणके साथ यज्ञोत्सव देखनेके लिये मिथिलामें पधारे। यज्ञ-रक्षासे प्रारम्भ होकर जनकपुरमें शक्तिवरणपर समाप्त राजा जनकको जब उनके आनेका समाचार मिला, तब वे हुआ। वनमें रावणके द्वारा सीता-हरण करके उन्हें श्रेष्ठ पुरुषों और ब्राह्मणोंको साथ लेकर उनसे मिलनेके समुद्रके पार लंका ले जाना रामायणमें नया मोड लाता लिये गये। श्रीरामकी मनोहारिणी मूर्ति देखकर राजा विदेह है। लंका-प्रवास भगवती सीताके धैर्यकी पराकाष्ठा है। (जनक) विशेष रूपसे विदेह हो गये। विश्वामित्रजीने समुद्रको पार करके श्रीरामने रावणके साथ अजेय श्रीरामके शौर्यकी प्रशंसा करते हुए महाराज जनकसे राक्षसोंका संहार करके अपनी सीताशक्तिको पुनः प्राप्त अयोध्याके दशरथनन्दनके रूपमें उनका परिचय कराया। किया। भगवती सीताके कारण ही जनकपुरवासियोंको परिचय पाकर महाराज जनकको विशेष प्रसन्नता हुई। श्रीरामका दर्शन और लंकावासियोंको मोक्ष प्राप्त हुआ। पुष्पवाटिकामें श्रीराम-सीताका प्रथम परिचय हुआ। इस वर्ष २४ फरवरीको भगवती सीताजीका प्राकट्य-दोनों चिरप्रेमी एक-दूसरेकी मनोहर मूर्तिको अपने हृदयमें दिवस है।

अनमोल वचन— परमात्मा परम दयालु हैं ( ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

🍁 ईश्वरका दण्ड भी वरके सदृश होता है। ईश्वरके न्यायसे फरियादी और असामी दोनोंका ही परिणाममें हित

और उद्धार होता है, यही उसकी विशेषता है। परम दयालु परमात्माके कानूनके अनुसार जो अपराधी अपनी भूलको

सच्चे दिलसे स्वीकार करता हुआ भविष्यमें फिर अपराध न करनेकी प्रतिज्ञा करता है और सच्चे हृदयसे ईश्वरके शरण

होकर सर्वस्वसहित अपनेको उसके चरणोंमें अर्पण कर देता है एवं ईश्वरकी कड़ी-से-कड़ी आज्ञाको-उसके

भयानक-से-भयानक विधानको, उसके प्रत्येक न्यायको सानन्द स्वीकार करता तथा उसे पुरस्कार समझता है, साथ ही

अपने किये हुए अपराधोंके लिये क्षमा नहीं चाहकर दण्ड ग्रहण करनेमें ख़ुश होता है। ऐसे सरल-भावसे सर्वस्व-

अर्पण करनेवाले शरणागत भक्तको भगवान् अपराधोंसे मुक्त करके उसे अभय कर देते हैं।

🍁 ईश्वरकी दया अपार है, परंतु जो जितनी मानता है, उतनी ही दया उसको फलती है, इसलिये उस

ईश्वरकी जितनी अधिक-से-अधिक दया तुम अपने ऊपर समझ सको, उतनी ही समझनी चाहिये। तुम्हारी कल्पना

जितनी अधिक होगी, तुम्हें उतना ही अधिक लाभ होगा।

🔹 जबतक ईश्वरके विधानमें सन्तोष नहीं है और सांसारिक सुख-दु:खादिकी प्राप्तिमें हर्ष-शोक होता है,

तबतक मनुष्यने भगवानुकी दयाके तत्त्वको वास्तवमें समझा ही नहीं है। जब ईश्वरको कर्मींके अनुसार फल

देनेवाला, न्यायकारी, परम प्रेमी, परम हितैषी, परम दयालु और सुहृद समझ लिया जायगा, तब उनके किये हुए

सभी विधानोंमें आनन्दका पार न रहेगा।

🕏 परमात्माकी दया तो समानभावसे सबपर सदा ही है, परंतु मनुष्य जब परमात्माकी शरण हो जाता है,

तब ईश्वर उसपर विशेष दया करते हैं। जैसे सुनार सुवर्णको आगमें तपाकर पवित्र बना लेता है, वैसे ही परमात्मा

अपने भक्तको अनेक प्रकारकी विपत्तियोंके द्वारा तपाकर पवित्र बना लेते हैं।

🍁 ईश्वरकी दयाके लिये क्या कहा जाय? सम्पूर्ण जीवोंके मस्तकपर उनका निरन्तर हाथ है, परंतु अभागे

जीव उस हाथको हटाकर परे कर देते हैं! जब यह जीव कोई बुरा काम करनेके लिये तैयार होता है, तो प्राय:

ही उसीके हृदयसे यह आवाज आती है कि 'यह बुरा काम है।' इस प्रकारकी जो चेतावनी है, यह ईश्वरका

मस्तकपर हाथ है। ईश्वर उसको समयपर चेता देते हैं। मालूम होता है, मानो हृदयस्थ कोई पुरुष निषेध करता

है कि यह काम बुरा है, परंतु काम या लोभके वश होकर ईश्वरकी आज्ञाकी अवहेलना करके बुरे काममें प्रवृत्त

हो ही जाता है, यही उस कृपासिन्धुकी कृपाकी अवहेलना करना है अर्थात् अपने मस्तकपर जो उनका हाथ है. उसको परे हटाना है।

🛊 परमात्माका विश्वास ज्यों-ज्यों बढता जायगा, त्यों-ही-त्यों सारे दोष स्वयमेव नष्ट होते चले जायँगे।

सर्वव्यापी परमेश्वरमें जितना अधिक विश्वास होगा, उतना ही आत्मा अधिक उन्नत होगा। जैसे सूर्यके उदय होनेके

पूर्व उसके आभाससे ही अन्धकार मिट जाता है, वैसे ही परमात्माकी शरण ग्रहण करनेसे पहले ही उसपर विश्वास

होते ही पाप नष्ट हो जाते हैं। सब समय सब जगह परमात्माके स्थित होनेका विश्वास हो जानेपर मनुष्यसे कभी

कहीं भी पाप नहीं हो सकते।

🖈 अपनी कल्पनामें ईश्वरको जो जैसा समझता हो, उसे वैसे ही स्वरूप या भावका निरन्तर चिन्तन करना

चाहिये। ईश्वरके सम्बन्धमें इतनी बातें अवश्य ही दुढतापूर्वक हृदयमें धारण कर लेनी चाहिये कि ईश्वर है, सर्वत्र

है, सर्वान्तर्यामी है, सर्वशक्तिमान् है, सर्वव्यापी है, सर्व-दिव्य-गुण-सम्पन्न है, सर्वज्ञ है, सनातन है, नित्य है, परम प्रेमी है, परम सुहृद् है, परम आत्मीय है और परम गुरु है। इन गुणोंमें उससे बढ़कर या उसकी जोड़ीका

दूसरा जगत्में न कोई हुआ, न है और न हो सकता है।

संख्या २ ] पंचमहायज्ञ पंचमहायज्ञ ( गोलोकवासी सन्त श्रीकेशवरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज ) अग्निवें देवानां मुखम्। अग्निमुखाः वै देवाः। करनेको भूतयज्ञ कहते हैं। आकाश, तेज, जल, वायु अग्नि परमात्माका मुख है। अग्निद्वारा भगवान् और पृथ्वी-ये पाँच महाभूत कहलाते हैं। प्रत्येकके आरोगते हैं। घरमें तुम ठाकुरजीको भोग धरो, परंतु एक-एक अधिष्ठाता देव हैं। इन देवोंका पूजन करना, अग्निमें आहुति न दो, तबतक प्रभु तृप्त होते नहीं। इनके लिये आहुति देनेको भी भूतयज्ञ कहा जाता है। अग्निमें आहृति देनी ही चाहिये। शास्त्रमें लिखा है कि प्रत्येक गृहस्थको ये यज्ञ रोज करने ही चाहिये। घरमें रसोई हो तो उसमें अनेक जीवोंकी हिंसा भी होती कितने ही लोग ठाकुरजीको थाल तो धरते हैं, परंतु है। रसोई बनानेमें अनेक जीव मरते हैं और उस हिंसाका अग्निमें आहुति देते नहीं। कथा सुननेके पीछे रोज पाप अन्नमें भी आ जाता है। अन्नद्वारा यह पाप अग्निमें आहुति दो। कदाचित् तुमको ऐसा लगता होगा खानेवालेके माथे आता है। अन्नसे मन न बिगड़े, कि महाराज! आप कहते हैं, परंतु हमको तो कोई मन्त्र इसलिये अन्नको शुद्ध करना बहुत जरूरी है। अन्नको नहीं आता। तुमको 'हरे राम, हरे कृष्ण' बोलना तो शुद्ध करनेके लिये अग्निमें आहुति दी जाती है। आता है न? वहीं बोलो। भातमें थोड़ा घी डालो, भातको गृहस्थके घरमें पंच महायज्ञ होना चाहिये। देवयज्ञ, घीयुक्त करके अग्निदेवको जिमाओ। अग्निकी ज्वाला ऋषियज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ और भूतयज्ञ—ये पाँच ठाकुरजीकी जीभ है। जैसे माँ बहुत प्रेमसे बालकके मुखमें ग्रास-ग्रास देती है, वैसे ही तुम भी प्रेमसे ऐसी महायज्ञ कहे गये हैं। देवता वर्षा करते हैं, उससे अन्नकी उत्पत्ति होती भावना रखो कि मैं अपने ठाकुरजीके मुखमें देता हूँ। है। इसलिये उनको आहुति देनी आवश्यक है। इन्द्र, ब्राह्मण पवित्र वेदमन्त्र बोलकर परमात्माके मुखमें आहुति वरुण, अग्नि आदि देवताओंको आहुति देना, उनका देते हैं, प्रभुको जिमाते हैं। स्मार्त वैश्वानरको-अग्निदेवको आहृति देनेके पीछे पुजन करना देवयज्ञ कहा जाता है। उपनिषद्, महाकाव्य, इतिहास-पुराण आदि अमूल्य भगवानुको भोग धरते हैं। स्मार्त लोग ऐसा मानते हैं कि ज्ञानका उत्तराधिकार हमें ऋषियोंने दिया है। ऋषियोंके अग्निमें आहुति देनेसे ही अन्न शुद्ध होता है और अन्न हमारे ऊपर अनन्त उपकार हैं। प्राचीनकालमें गृहस्थ शुद्ध हो जाय तभी परमात्माको अर्पण करना चाहिये। प्रथम अरण्यमें जाकर ऋषियोंको जिमाता और तब पीछे अशुद्ध अन्न भगवान्को क्यों अर्पण हो? ही स्वयं भोजन करता। यह ऋषियज्ञ कहलाता है। वैष्णवोंकी ऐसी भावना होती है कि ठाकुरजी न हमारे ऊपर पूर्वजोंका बड़ा ऋण है। यह शरीर आरोगें, तबतक अग्निदेव भोजन करते नहीं। इससे पित्रीश्वरोंका आभारी है और इसीसे रोज पितृश्राद्ध वैष्णव प्रथम भगवान्को भोग धरते हैं और पीछे अग्निमें करना गृहस्थका धर्म है। इसको पितृयज्ञ कहते हैं। आहुति देते हैं। भूखे मनुष्योंको भोजन देनेको मानवयज्ञ कहते दो-मेंसे कोई भी सिद्धान्त अपनाओ। भगवान्को हैं। आँगनमें कोई गरीब आये, कोई भिखारी आये, कोई भोग धरके अग्निमें आहुति दो अथवा प्रथम अग्निमें आहुति देकर पीछे भगवान्को भोग धरो। दोनों सिद्धान्तोंमें अग्नि-साधु-ब्राह्मण आये, आस-पास पड़ोसमें कोई भूखा हो-उन सबको जिमाकर जीमना गृहस्थका धर्म होता है। उपासना आवश्यक है। अग्नि और सूर्य—ये दो देव प्रत्यक्ष इस जगत्के प्रत्येक प्राणीके प्रति मनुष्यका कुछ हैं। अरे, पेटमें भी अग्नि है, इसीलिये मानव जीवित रहता धर्म है। पश्-पक्षी आदि मूक प्राणियोंको अन्नसे तृप्त है। पेटमें रहनेवाले अग्निदेव शान्त हों तो पीछे **'अच्युतं** 

भाग ९६ **केशवम्'** हो जाता है, मरण हो जाता है। अग्निके आधारसे करना है। प्रेमसे अर्पण करोगे तो भगवान् प्रसन्न होंगे। ईश्वरको तो कोई अपेक्षा नहीं। वे तो स्वयं जो रसोई हुई, उसमेंसे अग्निमें आहुति दिये बिना जो खाता है, वह पाप खाता है। जो परमात्माको भोग धरता नहीं, आनन्दस्वरूप हैं। ठाकुरजीको ऐसी इच्छा नहीं कि वैष्णव अग्निमें आहृति देता नहीं और स्वयं खा लेता है, वह अन्न मुझे भोग लगाये। ठाकुरजी पूर्ण निष्काम हैं। भगवान् खाता नहीं, पाप खाता है। जो केवल स्वयंके लिये राँधकर तो भक्तोंको राजी करनेके लिये आरोगते हैं। भगवान्के खाता है, वह पाप खाता है। घर क्या कमी है ? यह सब कुछ उनका ही दिया हुआ है। भगवान्को भोग न धरो, उससे भगवान् भूखे रहनेवाले यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्विकल्बिषै:। नहीं, परंतु तुमको किसी भी दिन भूखे रहनेका प्रसंग आ भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ जायगा। इस जन्ममें नहीं तो अगले जन्ममें। (गीता ३।१३) जब अग्निमें आहुति दो तब भगवान्का स्मरण भगवान्को भूख लगती ही नहीं। भगवान् तो तुम्हारे करो और ऐसा भाव रखो कि ठाकुरजीको जिमाता हूँ। भावको देखते हैं। अपने शरीरसे जितना प्रेम रखते हो, उससे विशेष प्रेम भगवान्में रखो। घरमें कोई जीमनेवाला फिर वह अन्न अन्न नहीं रहता, अमृत बन जाता है। खाना पाप नहीं है, परंतु भगवानुको अर्पण किये बिना न हो तो भी भगवानुके लिये रसोई बनाओ। जिस घरमें खाना पाप है। भगवानुको नैवेद्य ग्रहण कराये बिना भगवानुके लिये रसोई होती है, उस घरमें अन्नपूर्णा विराजती खाना नहीं। नारायणका ही है और नारायणको ही अर्पण हैं, उस घरमें अन्नकी कभी कमी नहीं पडती। 'ये नववर्ष हमें स्वीकार नहीं' ( श्रीरामधारी सिंहजी 'दिनकर') ये नववर्ष हमें स्वीकार नहीं, नये साल नया कुछ हो तो सही, तब चैत्र शुक्ल की प्रथम तिथि है अपना ये त्यौहार नहीं। क्यों नकल में सारी अक्ल बही। नववर्ष मनाया जायेगा। है अपनी ये तो रीत नहीं, आर्यावर्त की पुण्यभूमि पर है अपना ये व्यवहार नहीं। उल्लास मन्द है जन-मन का, जयगान सुनाया जायेगा। आयी है अभी बहार नहीं। धरा ठिठुरती है सर्दी से, ये नववर्ष हमें स्वीकार नहीं, युक्ति-प्रमाण से स्वयं सिद्ध, आकाश में कोहरा गहरा है। है अपना ये त्यौहार नहीं। नववर्ष हमारा हो प्रसिद्ध। बाग बाजारों की सरहद पर, आर्यों की कीर्ति सदा-सदा, ये धुंध कुहासा छँटने दो, सर्द हवा का पहरा है। नववर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदा। रातों का राज्य सिमटने दो। सूना है प्रकृति का आँगन, प्रकृति का रूप निखरने दो, अनमोल विरासत के धनिकों को, कुछ रंग नहीं, उमंग नहीं। फागुन का रंग बिखरने दो। चाहिये कोई उधार नहीं। हर कोई है घर में दबका हुआ,

हर कोई है घर में दुबका हुआ, नववर्ष का ये कोई ढंग नहीं। प्रकृति दुल्हन का रूप धार, जब स्नेह-सुधा बरसायेगी। है अपना ये त्यौहार नहीं, चंद मास अभी इंतजार करो, शस्य-श्यामला धरती माता, है अपनी ये तो रीत नहीं, निज मन में तिनक विचार करो। घर-घर खुशहाली लायेगी। Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE संख्या २ ] प्रेमका स्वरूप प्रेमका स्वरूप ( नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ) प्रेम वस्तुत: वाणीकी वस्तु नहीं है; जिसका वर्णन सामने दूसरेको आदर देता है, उसमें हजारों दोषोंका उदय हो गया है, ऐसी अवस्थामें प्रेम नष्ट होना ही वाणीसे हो सकता है, वह तो प्रेमका अत्यन्त स्थूल बाहरी स्वरूप है। प्रेम हृदयमें रहता है और प्रेमीको चाहिये।' प्रेममय बना डालता है। संसारमें ऐसी अवस्था हो ही जाती है; परंतु इस भगवान् श्रीरामने श्रीजानकीजीके पास यह प्रेमसन्देश स्थितिमें जो प्रेम कभी घटता नहीं, बल्कि दिनोंदिन बढ़ता ही रहता है, उसीका नाम यथार्थ प्रेम है। भेजा था— रसखानि कहते हैं-तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥ सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥ बिनु जोबन गुन रूप धन, बिनु स्वारथ हित जानि। 'तुम्हारे और मेरे प्रेमका तत्त्व केवल एक मेरा मन सुद्ध कामनाते रहित, प्रेम सकल 'रसखानि'॥ जानता है और वह मन सदा तेरे पास रहता है।' प्रेममें अति सूच्छम, कोमल अतिहि, अति पतरो, अति दूर। स्वार्थके लिये जरा-सी भी जगह नहीं है। जहाँ कुछ भी प्रेम कठिन सबते सदा नित इकरस भरपूर॥ पानेकी वासना है, वहाँ प्रेमके पवित्र आसनको काम रसमय, स्वाभाविक, बिना स्वारथ, अचल महान। कलंकित कर रहा है। प्रेममें देना-ही-देना है, लेने या सदा एकरस बढ़त नित, सुद्ध प्रेम 'रसखान'॥ पानेकी कल्पना भी नहीं है। प्रेम सदा बढ़ता ही रहता प्रेमकी बाढ़ कभी रुकती ही नहीं—इस चन्द्रकलाके है। प्रेमी कभी यह मान ही नहीं सकता कि मुझमें पूरा लिये कभी पूर्णिमा नहीं होती। प्रेम है। वह सदा अपनेमें त्रुटि ही देखा करता है और प्रेम सदा बढ़िबौ करै, ज्यों सिसकला सुबेष। अनन्यभावसे प्रेमास्पदके प्रति सदा हृदयको आकृष्ट पै पूनौ यामें नहीं, तातें कबहुँ न सेष॥ रखता है। गुण देखकर अथवा किसी आशासे जो प्रेम और ऐसा प्रेम वस्तुत: केवल भगवान्में उनके प्रेमी होता है, वह गुणोंका ह्रास देखते ही अथवा आशाभंगकी भक्तका ही हो सकता है। देवर्षि नारदजी ऐसे प्रेमका आशंका होते ही घट जाता है या नष्ट हो जाता है। वह लक्षण बतलाते हुए कहते हैं-वास्तवमें प्रेम नहीं है। वहाँ काम ही प्रेमके नामपर राज्य अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्। मूकास्वादनवत्। प्रकाश्यते क्वापि पात्रे। गुणरहितं कामनारहितं कर रहा है। प्रतिक्षणवर्धमानमविच्छिन्नसूक्ष्मतरमनुभवरूपम्। तत्प्राप्य छिनहि चढ़ै, छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय। तदेवावलोकयति, तदेव शृणोति तदेव चिन्तयति॥ अघट प्रेम पिंजर बसै प्रेम कहावै सोय॥ अन्यत्र कहा गया है— (नारदभक्तिसूत्र ५१-५५) अर्थात् 'प्रेमके स्वरूपका उसी प्रकार वर्णन नहीं ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे। यद्भावबन्धनं यूनोः स प्रेमा परिकीर्तितः॥ किया जा सकता, जैसे गूँगा स्वादका वर्णन नहीं कर सकता। 'ध्वंसका कारण वर्तमान होनेपर भी जो सर्वथा ऐसा प्रेम किसी विरले भाग्यवान् अधिकारी (परम विषय-ध्वंसरिहत है, इस प्रकारके परस्परके भावको प्रेम कहते विरागी भगवदनुरागी) भक्तमें ही प्रकट होता है। यह प्रेम गुणोंसे रहित है, इसमें कामनाकी गन्ध नहीं है, हर क्षण हैं अर्थात् प्रेमास्पदका धन नष्ट हो गया, रूप जाता रहा, उसके सद्गुण दुर्गुणोंमें परिणत हो गये, उसने आदर-बढ़ता ही रहता है, इसका प्रवाह सदा अट्टट रहता है, यह सत्कार या प्रेम करना छोड़ दिया, वह पद-पदपर अतिसूक्ष्म है, केवल अनुभवसे जाना जा सकता है। इस तिरस्कार करता है, हमारा अपमान करके हमारे ही प्रेमको पाकर भक्त केवल प्रेमको ही देखता है, प्रेमको ही

भाग ९६ सुनता है और प्रेमका ही चिन्तन करता है।' वहाँ प्रेम और काननमें कुंजनमें गोपिनमें गायनमें, प्रेमास्पदमें कोई अन्तर नहीं रह जाता, क्योंकि— गोकुलमें गोधनमें दामिनीमें घनमें। जहाँ-जहाँ देखें तहाँ स्याम ही दिखाई देत, प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेमसरूप। एक होइ द्वैमें लसै, ज्यों सूरज अरु धूप॥ सालिगराम छाइ रह्यो नैननमें मनमें॥ इसी प्रेमभावको प्राप्त गोपियोंकी दशाका वर्णन करते हुए भक्त कविगण क्या कहते हैं, कुछ नमूने देखिये— किह न जाय मुखसौं कछू स्याम-प्रेमकी बात। नभ जल थल चर अचर सब स्यामहि स्याम लखात॥ जित देखों तित स्याममई है। ब्रह्म नहीं, माया नहीं, नहीं जीव, नहिं काल। स्याम कुंज बन जमुना स्यामा, स्याम गगन घनघटा छई है॥ अपनीहू सुधि ना रही, रह्यौ एक नँदलाल॥ सब रंगनमें स्याम भरो है, लोग कहत यह बात नई है। को कासों, केहि बिधि, कहा कहै हृदै की बात। हरि हेरत हिय हरि गयो, हरि सरबत्र लखात॥ मैं बौरी, की लोगन ही की स्याम पुतरिया बदल गई है।। चंद्रसार रिबसार स्याम है, मृगमद स्याम काम बिजई है। (**ξ**) नीलकंठको कंठ स्याम है, मनो स्यामता बेल बई है।। 'नारायण' जाके हृदय सुंदर स्याम समाय। फूल पात फल डारमें ताको वही लखाय॥ श्रुतिको अच्छर स्याम देखियत, दीपसिखापर स्यामतई है। नर-देवनकी कौन कथा है, अलख-ब्रह्म-छिब स्याममई है।। दर दिवार दरपन भये, जित देखों तित तोहि। (२) काँकर पाथर ठीकरी भये आरसी मोहि॥ इस तरह कृष्णमय जगत् देखनेवाली गोपियोंकी कानन दूसरो नाम सुनै निह, एकहि रंग रँगो यह डोरो। एक गाथा इस प्रकार है-दिन-रात श्रीकृष्ण-चर्चामें धोखेहुँ दूसरो नाम कढ़ै, रसना मुख बाँधि हलाहल बोरो॥ लगी हुई गोपियोंसे एक दिन एक गोपीने पूछा—'बहिन! ठाकुर चित्तकी वृत्ति यहै हम कैसेहुँ टेक तजै नहिं भोरो। क्या कहूँ, नन्दबाबा गोरे, यशोदाजी गोरी, दाऊजी गोरे, बावरी वे अँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाड़ि निहारित गोरो॥ घरभरमें सभी गोरे, हमारे श्यामसुन्दर ही साँवरे कैसे हो (3) गये?' इसपर एक कृष्णदर्शनमयी गोपीने कहा-पहले ही जाय मिले गुनमें स्त्रवन, फेरि 'बहिन! क्या तू इतना भी नहीं जानती—अरी! रूपसुधा मधि कीनो नैनहू पयान है। कजरारो अँखियानमें बस्यो रहत दिन-रात। हँसनि, नटनि, चितवनि, मुसुकानि, सुघराई, रसिकाई मिली मित पय-पान है॥ पीतम प्यारो हे सखी, तातें साँवर गात॥ कितने रहस्यकी बात है, गोपीकी कजरारी आँखोंमें मोहि-मोहि मोहनमयी री मन मेरो भयो, केवल श्रीकृष्ण ही बसते हैं, जगत्में उसकी आँखें और 'हरीचंद' भेद न परत पहचान है। किसीको देखती ही नहीं। कुछ लोग कहा करते हैं कि कान्ह भये प्रानमय, प्रान भये कान्हमय, गोपियाँ भगवान्को सर्वव्यापक नहीं मानती थीं। उनका हियमें न जानि परै कान्ह है कि प्रान है॥ यह कहना ठीक ही है; क्योंकि गोपियाँ एकमात्र (8) भगवान्को ही देखती थीं। जब दूसरी कोई वस्तु ही नहीं बाटनमें घाटनमें बीथिनमें बागनमें, रही, तब कौन किसमें व्यापक हो? बुच्छनमें बेलिनमें बाटिकामें बनमें।

दरीचनमें,

तनमें ॥

देहरी

हारनमें भूषनमें

दिवारनमें

दरनमें

हीरनमें

इस प्रकार श्रीकृष्णके दिव्य प्रेममें डूबी हुई

गोपियोंके चरण-पंकज-परागको बार-बार नमस्कार है।

संख्या २ ] जब अपवित्र विचार घेरते हैं! हमारे आन्तरिक शत्रु-जब अपवित्र विचार घेरते हैं! [काम—कारण और निवारण] ( श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट ) पतनकी सीढ़ीका पहला डंडा है—अपवित्र विचार। कितनी बार गिरा हूँ, कहाँ-कहाँ गिरा हूँ, कब-गीताके ये श्लोक मैंने एक-दो बार नहीं, अनेकों कब गिरा हूँ, इसका भी कोई पार है! तुलसी बाबाके शब्दोंमें-बार पढ़े होंगे-ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते। अवगुन सब अपने सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥ कथा पार नहिं लहऊँ॥ बाढ़इ क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः। पत्नी कभी-कभी भावविभोर होकर गाती है-स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ भगवन तुम्हारी यादमें जाऊँ कहाँ कहाँ? (२।६२-६३) विषयोंका ध्यान किया नहीं कि पतनका गड़हा चौदह भुवनमें विराजते पाऊँ कहाँ कहाँ? तैयार! अपवित्र विचारोंका चिन्तन किया नहीं कि गये! दुनियाके पापियोंमें मुकुट मुझको समझ लो, जानता हूँ और अच्छी तरह जानता हूँ कि पतनका नस-नसमें भरा पाप, छिपाऊँ कहाँ कहाँ?\*\*\*\* सूत्रपात अपवित्र विचारोंसे होता है। उस समय मुझे अपनी दशापर बड़ा तरस आता है। फिर भी, मैं दिन-रात, आठ पहर, चौंसठ घड़ी सचमुच यहाँ तो नस-नसमें पाप ठुँसा पड़ा है, अपवित्र विचारोंसे अपनेको घेरे रखता हूँ। और यही कारण है कि मैं कदम-कदमपर गिरता मिलन वासनाएँ भरी पड़ी हैं, अपवित्र विचार डेरा जमाये हूँ, पग-पगपर ठोकरें खाता हूँ। बैठे हैं और मैं रात-दिन इन्हींके चक्करमें फँसा डूबता-उतराता रहता हूँ। लोग भले ही मुझे सदाचारी मानते रहें, आदर्श कहकर पुकारते रहें और इन उपाधियोंसे विभूषित खूब जानता हूँ कि कामके हाथका खिलौना बनना होनेपर मैं भले ही अहंकारसे फूलकर कुप्पा होता रहूँ, बहुत बुरा है, विकारग्रस्त होना गन्दी बात है। कभी-पर असलियत क्या है, इसका पता तो अन्तर्यामीको कभी उससे विरत होनेकी भी चेष्टा करता हूँ, भूले-छोड़कर और किसे है? भटके कभी सफल भी हो जाता हूँ, परंतु ज्यादातर बाजी वस्तुस्थितिका पता और किसीको रहता तो वह उसीके हाथ रहती है! निश्चय ही मेरी ओर उँगली उठाकर कहता— मैं सहज ही गिर जाता हूँ। उसकी बातोंसे समझ रक्खा है तुमने उसे खिज्र, जब कभी अपने पतनपर विचार करने बैठता हूँ तो उसके पावोंको तो देखो कि किधर जाते हैं! चिकत हो उठता हूँ कि किस तरह पलक मारते कहाँ-हृदयकी गहन गुफामें उतरकर जब मैं अपने पिछले से-कहाँ जा पहुँचा! जीवनपर दृष्टिपात करता हूँ, तो एक सर्द आह बरबस कितनी छोटी-सी बातने कितने गहरे ले जाकर निकल जाती है-डुबा दिया! तभी यदि अपवित्र विचारको रोक लिये होता, 'मो कुटिल कौन कामी!' खल

१४ कल्य	ाण [भाग ९६
***********************************	**************************************
उसपर नियन्त्रण कर लेता, उसे पनपनेका मौका नहीं	जिधर डाली नजर देखी उधर ही एक नयी सूरत।
देता, उसे इन्द्रियाँ न सौंपता, तो गिरनेकी नौबत ही क्यों	दिले नादाँ मचलता है कि मैं तो बस यही लूँगा॥
आती ?	नैना वैरी, रूपकी प्यास बुझानेके लिये हरदम
और यही तो नहीं हो पाता!	छटपटाया करते हैं।
ऐन मौकेपर ही चूक जाता हूँ।	× × ×
फिर तो गिरना अवश्यम्भावी है।	'आँखोंमें अबला, कानोंमें तबला' बसा हुआ है!
जवानीका रास्ता तो चिकना होता ही है, प्रौढ़ और	विषयरससे ओत-प्रोत कहानियाँ सुननेके लिये मेरे
बूढ़े भी वासनासे पीड़ित होते देखे जाते हैं।	कान आठ पहर चौंसठ घड़ी बेचैन रहते हैं। रसीले
और आजके दूषित वातावरणमें, जब यत्र-तत्र-	गानेकी कोई भी कड़ी कानमें पड़ भर जाय कि ऐसा
सर्वत्र अपवित्र विचारोंकी अजस्र धारा प्रवाहित हो रही	लगता है कि इससे आनन्ददायक वस्तु संसारमें और
है, कौन उससे अछूता रह पाता है?	होगी ही क्या!
× × ×	× × ×
आप यदि अपवित्र विचारोंसे प्रभावित नहीं होते,	निगोड़ी जीभकी तो बात ही क्या बताऊँ? पूड़ी
मलिन वासनाओंसे क्षुब्ध नहीं होते, आकर्षणके चक्करमें	और हलुआ, चमचम और रसगुल्ला, मिठाई और रबड़ी,
नहीं फँसते, मनोज-बाणोंसे व्यथित नहीं होते, तो आप	मिर्च और मसाला, अचार और चटनी चाटनेके लिये वह
प्रणम्य हैं, वन्दनीय हैं। आपके पावन चरणोंमें मेरे	रात-दिन जमीन-आसमानके कुलावे एकमें मिलाया
कोटि-कोटि प्रणाम!	करती है!
× × ×	× × ×
जहाँतक मेरा सवाल है, अपना तो अंग-अंग	गुलाब और केवड़ा, इत्र और हिनाकी गमक मेरी
विषय-वासनासे, अपवित्र विचारोंसे सराबोर है।	नासिकाको परम प्रिय है। चमेली और रजनीगन्धा, स्नो
यहाँ तो इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि सभी विषयोंकी	और क्रीमकी खुशबूसे दिल बाग-बाग हो उठता है!
चेरी हैं।	× × ×
पल-पल, क्षण-क्षण विकारोंकी ही आराधना	शैय्या मेरी कोमल होनी चाहिये। रजाई हो, गद्दा
करता रहता हूँ।	हो, तिकया हो। फूलोंसे सजी हुई रहे तो और उत्तम।
हर घड़ी रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्शके लिये	शरीरका रोम-रोम, त्वचाका कण-कण कोमल
ही आकुल रहता हूँ!	और स्निग्ध प्राणी-पदार्थोंके स्पर्शके लिये रात-दिन
× × ×	आकुल रहता है!
एक एक इन्द्रिय विषय लोलुप मीन मतंग।	× × ×
मरत तुरंत अनाथ सम, भृंग कुरंग पतंग॥	मतलब, मेरा अंग-अंग कामोत्तेजक प्राणी-पदार्थोंके
एक-एक इन्द्रिय ही जब बुरी तरह मारती और	संगके लिये हरदम बेचैन रहता है। भोग-विलासकी
जलाती है, तब यहाँ तो सभी इन्द्रियाँ एक साथ विषयोंके	वस्तुएँ मुझे परम प्रिय हैं। वासनाको उद्दीप्त करनेवाले
लिये व्याकुल रहा करती हैं!	प्राणी-पदार्थ मुझे सबसे अच्छे लगते हैं। यही जी करता
उसका नतीजा सामने है!	है कि आठ पहर चौंसठ घड़ी विषय-भोगकी ही
X X X X X	सरितामें अवगाहन किया करूँ।
नागु <del>द्राधिका</del> प्रमुहट्र <del>श्लि इह</del> ाver https://dsc.gg/dha	arma मेराMahr भाग Hahay जिम्हा Ayinasa Sahi

संख्या	[ 7 ]	जब अपवित्र वि	विचार घेरते हैं!	१५
<del>% % % %</del>	**********************	F 5F	<b> </b>	<u> </u>
हँसन	1-गाना, खेलना-कूदना—सब कुछ विल	गस-वासनासे	बात यह हुई कि ब्रह्मचर्यके	अपने अनुभवोंकी
ओत-	-प्रोत रहता है। ऐसा लगता है, माने	विलास ही	चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा—	
मेरे र	जीवनका एकमात्र लक्ष्य है। रात-दि	न मैं उसीमें	'ब्रह्मचर्यकी पूर्ण अवस्थाको मैं	अभी नहीं पहुँचा।
डूबत	ा−उतराता रहता हूँ!		यह अवश्य है कि वहाँतक पहुँचनेका	मेरा प्रयत्न निरन्तर
	× ×	×	जारी है। तनपर तो मैंने अपना काबू	कर भी लिया है,
	बचपनसे सुनता आ रहा हूँ कि ब्रह्म	वर्यका पालन	जाग्रत् अवस्थामें मैं सावधान रह स	कता हूँ। वचनके
करन	। चाहिये, इन्द्रियोंको काबूमें रख	ाना चाहिये,	संयमका पालन करना भी ठीक-ठी	क सीखा है, पर
काम	वासनाका शिकार नहीं बनना चाहिये	TI.	विचारपर अभी मुझे बहुत कुछ काबृ	्करना बाकी है।
	अन्तरात्मासे भी ऐसा ही आदेश मिल	नता रहता है।	जिस समय जिस बातका विचार कर	ना हो, उस समय
	वेद और शास्त्रमें, पुराण और कुरान	ामें, बाइबिल	केवल एक उसीके विचार आनेके बदर	ले दूसरे विचार भी
और	धम्मपदमें ऐसा ही पढ़ा भी है।		आ जाया करते हैं। इसमें विचारोंमें	परस्पर द्वन्द्व हुआ
	मौके-बेमौके स्वयं भी ऐसा प्रवचन	किया है।	करता है। फिर भी जाग्रदवस्थामें मैं	विचारोंको परस्पर
	परंतु, इन बातोंको जीवनमें कहाँ उत	गर पाया हूँ?	टक्कर लेनेसे रोक सकता हूँ। मेरी या	ह स्थिति कही जा
	× ×	×	सकती है कि गन्दे विचार तो आ ही	नहीं सकते, मगर
	और जबतक ज्ञान आचरणमें नहीं उ	गाता, तबतक	निद्रावस्थामें विचारोंपर मेरा काबू कम	<b>।</b> रहता है। नींदमें
उसक	न मूल्य ही क्या?		अनेक प्रकारके विचार आते हैं, अकलि	पत सपने भी आते
	उपदेश जबतक जीवनमें नहीं उत	रता, शरीरके	ही रहते हैं और कभी–कभी इसी देहव	<b>ी</b> की हुई बातोंकी
रोम-	रोममें नहीं भिदता, तबतक उसकी	सार्थकता ही	वासना भी जाग्रत् हो उठती है। वे वि	वार जब गन्दे होते
क्या ह	)		हैं, तब स्वप्नदोष भी होता है। यह	इ स्थिति विकारी
	पढ़ना गुनना चातुरी, तीनों बात स	ाहल्ल ।	जीवनकी ही हो सकती है।'	
	काम दहन, मन बस करन, गगन चढ़न मुश	केल्ल॥	× ×	×
	× ×	×	इस विवरणको पढ़कर एक सज	जनने यह सोचकर
	बात यह है कि यह चढ़ाई बहुत क	ठिन है। इस	ब्रह्मचर्यपालनकी आशा छोड़ दी कि	गाँधीजीके भीष्म
राहमें	बड़ी जल्दी दम फूलने लगता है।		प्रयत्नोंके बाद भी उनकी यदि यह हा	तत है कि स्वप्नमें
	इसके विपरीत नीचेका रास्ता बड़ा	चिकना है।	अपवित्र विचार आ जाते हैं, तो हम कि	प़ खेतकी मूली हैं!
उसप	र पैर फिसलते देर नहीं लगती। क्षा	णेक सुखका	×	×
आक	र्षण मेरे-जैसे सहज पतनशील व्यक्तियं	ोंको पलभरमें	महात्माजीने इसका जो उत्तर दिय	ा, वह स्वर्णाक्षरोंमें
गिरा	देता है।		अंकित करनेयोग्य है। आपने लिखा-	_
	बड़ा कँटीला रास्ता है यह। पग-पगपर ट	ग्रेकर लगनेकी	'केवल इतना ही जानना संसारवे	5 लिये यथेष्ट क्यों
नौबत	। है, पता नहीं इसके राही किस क्षण ल्	<sub>]</sub> ट जायँ!	न हो कि मैं सच्चा शोधक हूँ, पूरा	जाग्रत् हूँ, सतत
	परंतु, इसका अर्थ यह तो नहीं ही है वि	क्र पहलेसे ही	प्रयत्नशील हूँ और विघ्न-बाधाओंसे	डरता नहीं ? ऐसी
हताश	। होकर इस मार्गपर पैर ही न रखे जायँ।	अथवा कभी	दलील ही क्यों दी जाय कि मेरे समा	न व्यक्ति जब बुरे
गिर उ	जानेपर फिरसे उठनेकी कोशिश ही न	क्री जाय।	विचारोंसे न बच सका, तो दूसरोंके लि	गये कोई आशा ही
	बापूने एक बार इसका बड़ा ही सटीक उ	उत्तर दिया था।	नहीं है ? क्यों न सोचा जाय कि व	ह गाँधी, जो एक
	×	×	समय कामवासनामें डूबा हुआ था,	आज यदि अपनी

लेते हैं। जो शक्ति प्राप्त है, उसे भी अपनी हीन पत्नीके साथ भाई या मित्रके समान रह सकता है और भावनासे नष्ट कर लेते हैं। जहाँ कल्पनाके ही पाँव संसारकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियोंको बहिन या बेटीके रूपमें देख सकता है, तो नीच-से-नीच और पतित व्यक्तिके ट्ट गये तो फिर नीचे गिरनेके सिवा क्या गति होगी? लिये भी उठनेकी आशा है। यदि ईश्वरने इतने विकारोंसे अतः कल्पनाका रुख हमेशा ऊपरकी ओर होना भरे हुए मनुष्यपर अपनी दया दिखायी तो निश्चय ही चाहिये। कल्पनाकी सहायतासे मनुष्य आगे बढ़ता है। वह दूसरोंपर भी दया दिखायेगा ही। जो मेरी न्यूनताओंको अतः कल्पनाको सिकोड मत डालो।' जानकर पीछे हट पड़े, वे कभी आगे बढ़े ही नहीं थे। 'आत्माका अपमान मत कर लो। साधकके पास यह तो झुठी साधुता कही जायगी, जो पहले ही धक्केमें विशाल कल्पना होगी, आत्मविश्वास होगा, तो ही वह चुर हो गयी। सत्य, ब्रह्मचर्य और दुसरे ऐसे सनातन सत्य टिक सकेगा। इसीसे उद्धार होगा। यदि उच्च आकांक्षा मेरे समान अपूर्ण मनुष्योंपर निर्भर नहीं करते। उनका नहीं रखोगे, तो एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकोगे।' अडिग आधार होती है उन अनेक महापुरुषोंकी अडिग तपश्चर्या, जिन्होंने उनके लिये प्रयत्न किया और उनका अपवित्र विचारोंसे मुक्त होना कठिन अवश्य है, सम्पूर्ण पालन किया।' असम्भव नहीं है। प्रयत्न किया जाय, उसके लिये जी-जानसे चेष्टा की जाय तो मुश्किल क्या है? X गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है-असली मुश्किल तो यह है कि हम शुरूमें ही कन्धा डाल देते हैं। हम पहलेसे ही मान बैठते हैं कि उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। अपवित्र विचारोंसे मुक्त हुआ ही नहीं जा सकता। फिर सन्त विनोबाने इसकी व्याख्या करते हुए कितना यदि अपवित्र विचार हमपर हावी रहते हैं, हमें घेरे रहते हैं, हमें पतनकी ओर घसीटते रहते हैं, तो इसमें सुन्दर कहा है— 'मैं जड़ हूँ, व्यवहारी हूँ, सांसारिक जीव हूँ'— अस्वाभाविक क्या है? ऐसा कहकर अपने आसपास बाड़ मत लगाओ। मत कहो कि 'मेरे हाथोंसे क्या होगा?' तुम तो आगे रमण महर्षि तथा इसी कोटिके महापुरुषोंके निकट बढनेकी, ऊपर चढनेकी हिम्मत रखो। जानेवालोंका अनुभव है कि वहाँ जाते ही समस्त विकार शान्त हो जाते हैं, सभी समस्याएँ स्वत: सुलझती प्रतीत 'ऐसी हिम्मत रखो कि मैं अपनेको अवश्य ऊपर उठा ले जाऊँगा। यह मानकर कि मैं क्षुद्र सांसारिक जीव होती हैं और हृदयमें शान्ति, सुख और आनन्दकी पावन हूँ, मनकी शक्तिको मार मत डालो। कल्पनाके पंख काट त्रिवेणी प्रवाहित होती जान पड़ती है। मत डालो। अपनी कल्पनाको विशाल बनाओ। चण्डुलका आखिर ये भी तो हमारी-आपकी ही तरह हाड़-उदाहरण अपने सामने रखो। प्रात:काल सूर्यको देखकर चण्डूल कहता है कि मैं सूर्यतक उड़ जाऊँगा। वैसा हमें मांसके पुतले हैं। जो बात इनके लिये सम्भव हो सकी, वह हमारे-बनना चाहिये। अपने दुर्बल पंखोंसे चण्डुल बेचारा कितना ही ऊँचा उड़े, तो भी वह सूर्यतक कैसे पहुँचेगा ? परंतु, अपनी आपके लिये क्यों सम्भव नहीं है? कल्पनाशक्तिद्वारा वह अवश्य सूर्यको पा सकता है।' 'हमारा आचरण इससे उलटा होता है। हम जितने निश्चय ही हम-आप भी अपवित्र विचारोंसे मुक्त ऊँचे जा सकते थे, उतने भी न जाकर अपनी कल्पना हो सकते हैं, केवल निश्चय चाहिये। और भावनाओंपर रुकावटें डाल अपनेको और नीचे गिरा 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।'

िभाग ९६

संयोगमें वियोगका दर्शन संख्या २ ] संयोगमें वियोगका दर्शन साधकोंके प्रति-( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज ) संसारमें संयोग और वियोग—दो चीजें हैं। जैसे आप हमारी स्थिति हो जायगी। कारण कि सचाईसे ही सचाईमें और हम मिले तो यह संयोग हुआ तथा आप और हम स्थिति होती है। परमात्मामें स्थितिका ही नाम है-मुक्ति। अलग हुए तो यह वियोग हुआ। तो ये जो संयोग और वियोग जो अवश्यम्भावी है अर्थात् जिसका होना निश्चित हैं, इन दोनोंमें वियोग प्रबल है। तात्पर्य यह कि संयोग होगा है, उस वियोगको पहले ही स्वीकार कर लें, तो फिर कि नहीं होगा—इसका तो पता नहीं, पर वियोग जरूर अन्तमें रोना नहीं पड़ेगा— होगा—यह पक्की बात है। जिसका वियोग हो जाय, उसका मन पछितैहै अवसर बीते। फिर संयोग होगा—यह निश्चित नहीं, पर जिसका संयोग अंतहु तोहिं तजैंगे पामर! तू न तजै अबही ते॥ हुआ है, उसका वियोग होगा—यह निश्चित है। इससे यह (विनय-पत्रिका १९८) सिद्ध होता है कि जितने भी संयोग हैं, सब वियोगमें जा वर्तमानमें ही वियोगको स्वीकार कर लेना 'योग' रहे हैं। प्रत्येक संयोगका वियोग हो रहा है। यह सबके है—'तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितम्।' (गीता अनुभवकी बात है। अब इसमें बुद्धिमानीकी बात यह है ६।२३) 'दु:खरूप संसारके संयोगके वियोगका नाम योग कि जिसका वियोग अवश्यम्भावी है, उसके वियोगको हम है।' संयोगमें विषमता रहती है। संयोगके बिना विषमता अभी, वर्तमानमें ही मान लें। फिर मुक्ति, तत्त्वज्ञान, बोध नहीं होती। संयोगका त्याग करनेसे विषमता मिट जाती है अपने-आप हो जायगा। कितनी सरल बात है! शरीर, और योग प्राप्त हो जाता है—'समत्वं योग उच्यते' (गीता इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण, 'मैं' पन—सबका एक दिन २।४८)। फिर न कोई दु:ख रहता है, न सन्ताप रहता है, वियोग हो जायगा। आप इनके वियोगका अनुभव वर्तमानमें न जलन या हलचल ही रहती है। ही कर लें। प्रत्येक संयोग वियोगमें बदल जाता है, इसलिये जबतक संयोग है, तबतक प्रेमसे रहो, दूसरोंकी सेवा करो—'सबसे हिलमिल चालिये, नदी नाव संजोग॥' वास्तवमें वियोग ही है, संयोग है ही नहीं। संयोगरूपी लकड़ी निरन्तर वियोगरूपी आगमें जल रही है। जितनी बन सके, सेवा कर दो। बदलेमें किसी वस्तुकी आशा मत रखो। जिनसे वियोग ही होगा, उसकी आशा रखे ही क्यों? जीवका वास्तविक सम्बन्ध परमात्माके साथ है; जिसे 'योग' कहते हैं। इसका कभी वियोग नहीं होता। माता, पिता, स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु आदि जितने भी हैं, उन वस्तुत: परमात्मासे जीवका वियोग कभी हुआ ही नहीं। सबसे एक दिन वियोग होगा। उनसे अच्छे-से-अच्छा व्यवहार कर जीव केवल परमात्मासे विमुख हो जाता है। मनुष्यका दें। मनकी यह गलत भावना निकाल दें कि वे बने रहेंगे। जो संसारसे संयोग होता है, योग नहीं होता। संयोगका तो मिला हुआ है, वह सब जा रहा है, फिर और मिलनेकी आशा वियोग हो जाता है, पर योग सदा रहता है। जैसे यहाँ हम क्यों रखें ? और मिलेगा कि नहीं मिलेगा—इसका पुरा पता नहीं, दो महीनेके लिये आये हैं। अब पन्द्रह-बीस दिन गुजर पर मिल जाय तो रहेगा नहीं — इसका पूरा पता है। फिर उसके मिलनेकी इच्छा करके व्यर्थ अपनी बेइज्जती क्यों करें ? गये, तो क्या अब भी दो महीने हैं? ये पन्द्रह-बीस दिन राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि भी रहते नहीं, अपितु जा ही वियुक्त हो गये, हम इनसे अलग हो गये और अलग हो ही रहे हैं। एक दिन पूरा वियोग हो जायगा। ऐसे मात्र रहे हैं। ये सब विनाशी हैं और जीव अविनाशी है—'*ईस्वर* पदार्थ, परिस्थिति, अवस्था आदिका हमसे वियोग हो रहा अंस जीव अविनासी।' विनाशीका संग छोडना मुक्ति है है। कोई नया संयोग होगा तो वह भी वियोगमें जायगा। और अविनाशीमें स्थित होना भक्ति है। विनाशीका वियोग हो ही रहा है। इस वियोगको अभी ही स्वीकार कर लें। फिर इसमें क्या सन्देह है, बताओ ? तो इस वियोगको ही हम

मुक्ति और भक्ति—दोनों स्वत:सिद्ध हैं।

महत्त्व दें, इसे ही सच्चा मानें। फिर परमात्मामें स्वतः

पक दिन रुद्रांश ऋषि दुर्वासा गोकुलमें पधारे। ब्रह्मानुभूतिको त्यागकर तुम यहाँ '''? ऋषि! आप? झुककर भगवती पौर्णमासीने प्रणाम किया। मामाजी! ब्रह्म तो मेरा यहीं है। कल ही उसने आप यहाँ भगवती? परम शैव हैं आप'''और शैवोंको चलना सीखा है। नहीं, नहीं '' घुटवन चलना सीखा है। तो शिवधाममें ही वास करना चाहिये'''आप यहाँ कैसे? निराकार ही यहाँ नराकार हो गया है मामा जी! खूब दुर्वासा ऋषिने पौर्णमासीसे चिकत हो, प्रश्न किया किलकारियाँ मारता है। नन्हें नन्हें पाँव पटकता है। जब था'''और भगवती! मुझे स्मरण होता है जब आप इन आँखोंसे ही दिखायी पड़ रहा है तो कौन ध्यान करे

और कौन आँखें बन्द करे?

ब्रह्मको हमें नहीं दिखाओगे?

तो शिवधाममें ही वास करना चाहिये ... आप यहाँ कैसे ? दुर्वासा ऋषिने पौर्णमासीसे चिकत हो, प्रश्न किया था ... और भगवती! मुझे स्मरण होता है जब आप काशीमें समाधिस्थ होती थीं ... निराकारके ध्यानमें आपका लीन हो जाना मुझे आनन्दित करता था ... आपके भाई ऋषि सान्दीपनिसे मैं मिला था महाकालके मन्दिरमें ... वे हैं अनन्य शैव ... काशी छोड़ कर गये भी तो शिवधाम अवन्तिकामें ... पर आप यहाँ क्यों ? प्रणाम मामाजी! पीछेसे आकर मनसुखने प्रणाम किया ऋषिको। मनसुखन मामा ही कहता है जो भी ऋषि

प्रणाम मामाजी! पीछेसे आकर मनसुखने प्रणाम किया ऋषिको। मनसुख मामा ही कहता है जो भी ऋषि इसे मिलें। और ये तो तुम्हारा पुत्र है? दुर्वासाने जब मनसुखको देखा तो पूछा। जी, ऋषिवर! ये मेरा ही पुत्र है... पौर्णमासीने इतना ही कहा। इसे ब्रह्मनिष्ठ बनातीं, ब्रह्मवेत्ता बनाना था इसे। ब्रह्मकुलका ये बालक है... कहाँ ले आयी हो तुम इसे...और स्वयं भी! दुर्वासाको अच्छा नहीं लग रहा है पौर्णमासी और मनसुखका गोकुलमें रहना... आप 'गौरस' आदि कुछ तो स्वीकार करें मेरी

कहा ल आया हा तुम इस "आर स्वय भा!
 दुर्वासाको अच्छा नहीं लग रहा है पौर्णमासी और
मनसुखका गोकुलमें रहना"
 आप 'गौरस' आदि कुछ तो स्वीकार करें मेरी
कुटियामें चलकर? पौर्णमासीने आग्रह किया।
 दुर्वासा भगवती पौर्णमासीकी बात मानकर उनकी
कुटियामें चल तो दिये और कुछ गौदुग्धका पान भी किया,
पर"। वत्स! ब्रह्मको जबतक नहीं जाना सब जानना व्यर्थ
है"। मनसुखके सिरमें हाथ रखते हुए दुर्वासाने कहा।
 भगवती पौर्णमासीके प्रति विशेष श्रद्धा रखते थे
ऋषि दुर्वासा" क्योंकि उस समय शायद ही कोई हो"
जो पूर्ण शिवानुरागिनी हो, अगर कोई थीं तो पौर्णमासी
ही थीं।
 समाधि लग जाती इनकी तो वर्षों यूँ ही बीत जाते।

इसलिये तो दुर्वासा आज पौर्णमासीके यहाँ पहुँच गये थे।

सनकादिकोंकी तरह तुम भी हो। एक ही वय तुम्हारी

मनसुख! तुमने कालको जीत लिया है।

पौर्णमासी हँस रही हैं। दुर्वासा ऋषिने उठते हुए कहा अब तो चलो नन्दके आँगनमें ही चलो देखते हैं तुम्हारे ब्रह्मको। ऐसा कहकर दुर्वासा ऋषि चल पड़े। आगे-आगे मनसुख बड़े उत्साहसे चल रहा था। लाला! लाला! उधरसे दाऊ आ गये थे अभ के ले सह ये। अभी बोलना नहीं आता कन्हैयाको ना, हाँ, हत् बस ऐसे ही कुछ शब्द हैं, जो कन्हाई बोल लेता है। चलो! उधर! उँगलीके इशारेसे बताया दाऊने। दाऊ भी तो छोटे ही हैं पर हाँ ये बोल लेते हैं। नन्द-महलके बाहर जानेके लिये दाऊ कह रहे हैं कन्हैयाको। खुश हो गये कन्हैया कन्हैयाका अर लेकर चले तो दाऊने हाथ पकड़ लिया कन्हैयाका अर लेकर चले जिल्ले हाथ पकड़ लिया कन्हैयाका अर लेकर चले स्राह्म हाथ पकड़ लिया कन्हैयाका स्राह्म हाथ पकड़ हाथ पकड़ लिया कन्हैयाका स्राह्म हाथ पकड़ लिया कन्हैयाका स्राह्म हाथ स्राह्म हाथ पकड़ लिया कन्हैयाका स्राह्म हाथ स्राह्म हाथ पकड़ लिया कन्हैयाका स्राह्म हाथ स्राह्म हा

पर अपनेको न सँभाल पानेके कारण कन्हैया गिर गये।

गिर गये तो रोने लगे। दाऊने चुप कराया फिर धीरेसे

बोले—'लाला! चल! उधर कन्हैया लगी चोटको फिर

भूल गये और घुटवन-घुटवन आगे बढ़ने लगे। चाल

तेज है दोनोंकी आज दोनोंने ही ये संकल्प कर लिया

जैसे-तैसे घुटनोंको छिल-छिलाके पहुँच ही गये

है कि देहरी पार करनी ही है।

है Higguiह्तकः Dispedid:Server हिttpहः//dspipg/dharma र्त्तहिम्भिPE WITH LOVE BY Avinash/Sha

हँसते हुए मनसुखने ये सारी बातें कह दी थीं। तो

ऋषिने भी मनसुखसे कह दिया। क्यों नहीं

मामाजी! सबको सुलभ है वो यहाँ? ज्ञानियोंके ब्रह्मकी दुर्लभता नहीं है उसकी यहाँ, न आँखें बन्द करनी है

आपको न 'अहं ब्रह्मास्मि' का अनुसन्धान बस देखना

है नन्दके उस आँगनमें। वहीं खेलता है आपका ब्रह्म।

[भाग ९६

पंजाब-केसरीकी उदारता संख्या २ ] अब देहरीसे नीचे उतरना है। दाऊने देखा, पर चिह्न, छोटा-सा उदर, गम्भीर नाभि, छोटे-छोटे चरण चंचलताकी पराकाष्ठा कन्हैया! वो तो नीचे उतर भी जो लटके हैं। गये। पर नीचे गहरा है बहुत, दो फुट भी तो इनके लिये चरणोंमें चिह्न हैं-चक्र, शंख, गदा, पद्म, यव, गहरा ही है। देहरीको पकड़ लिया ऊपर है, अब हाथ मछली, षट्कोण। आहा! दुर्वासा ऋषिकी आँखें खुली-छोड़ें तो गिर पड़ेंगे। गिर पड़ेंगे तो चोट लगेगी। की-खुली रह गयीं। हाँ, यही तो है ब्रह्म, जो निराकार था, आज साकार होकर प्रकटा है। पर दुर्वासा उस समय अब तो आ, ऊँ, जोरसे चिल्लाना शुरू किया कन्हैयाने। कन्हैयाके चिल्लानेसे डर गये दाऊ; क्योंकि चौंक गये। जब यह ब्रह्म रोने लगा और रोते हुए दाऊसे यहाँ वही तो लाये थे कन्हैयाको। वे कहें चुप! मैं इशारेमें कहने लगा—'मुझे ऊपर खींच'। खींचता हूँ तुझे, पर तू चुप रह। समझ गये कन्हैया भी, दाऊ भी तो बालक ही हैं। पूरी ताकत लगाकर वो चुप भी हो गये। दाऊने खींचना भी चाहा, पर फिर कन्हैयाको दाऊने खींचा। जैसे-तैसे खींच लिया ऊपर। लटक गये कन्हैया देहरीमें। ऋषि दुर्वासाको अब देहभान नहीं है" वो सब कुछ भूल चुके ... बस उनके हृदयमें यही 'बालकृष्ण' वत्स! ब्रह्मको जानना ही ब्राह्मणत्व है। दुर्वासा अच्छे-से बस गये हैं अब। समझाते हुए चल रहे थे। हँसा मनसुख और हँसते हुए रुक गया। वो देखिये, आपका ब्रह्म नन्दकी पौरीमें ऋषि आनन्दमें डूबकर यही गा रहे थे। अटका हुआ है। दुर्वासाने देखा वे स्तब्ध रह गये। उनके श्रुति जिसे पढ़नी हो, पढ़े, जिसे उपनिषद् पढ़ना नेत्र खुले-के-खुले रह गये। हो वो भी पढ़े। जिसे निराकार ब्रह्मज्योतिमें अपना ध्यान दिव्य नीलमणिके समान चमकता हुआ एक लगाना हो लगाये। पर मैं तो इस 'नन्ददेहरी' को प्रणाम बालक है। सूर्य-चन्द्र जिसके प्रकाशके आगे कुछ नहीं करता हूँ '' जिसमें ब्रह्म अटक गया था'' दुनियाको हैं। उसका प्रकाश हजारों सूर्योंके समान है, पर शीतलता उबारनेवाला स्वयं उबरनेके लिये याचना कर रहा था इतनी जितनी चन्द्रमामें भी नहीं है। लाल अधर, घुँघराले आहा! ये कहते हुए ऋषि दुर्वासा आनन्दित हो नाचते केश—ऐसा लग रहा है, जैसे मुखरूपी कमलमें सैकड़ों रहे... बुजरजको अपने शरीरमें लगाते रहे... मनसुख ये देखकर बहुत प्रसन्न हुआ था। भौंरे घूम रहे हों। नन्हें-नन्हें हाथ, वक्षमें भृगु-चरण-—— पंजाब-केसरीकी उदारता बोध-कथा— पंजाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह कहीं जा रहे थे। अकस्मात् एक ढेला आकर उनके लगा। महाराजको बड़ी तकलीफ हुई। साथी दौड़े और एक बुढ़ियाको लाकर उनके सामने उपस्थित किया। बुढ़िया भयके मारे काँप रही थी। उसने हाथ जोड़कर कहा—'सरकार! मेरा बच्चा तीन दिनोंसे भूखा था, खानेको कुछ नहीं मिला। मैंने पके बेलको देखकर ढेला मारा था। ढेला लग जाता तो बेल टूट पड़ता और उसे खिलाकर मैं बच्चेके प्राण बचा सकती, पर मेरे अभाग्यसे आप बीचमें आ गये। ढेला आपको लग गया। मैं निर्दोष हूँ, सरकार! मैंने ढेला आपको नहीं मारा था। क्षमा कीजिये।' बुढ़ियाकी बात सुनकर महाराज रणजीतसिंहजीने अपने आदिमयोंसे कहा—'बुढ़ियाको एक हजार रुपये और खानेका सामान देकर आदरपूर्वक घर भेज दो!' लोगोंने कहा—'सरकार! यह क्या करते हैं। इसने आपको ढेला मारा, इसे तो कठोर दण्ड मिलना चाहिये।' रणजीतसिंह बोले—'भाई! जब बिना प्राणोंका तथा बिना बुद्धिका वृक्ष ढेला मारनेपर सुन्दर फल देता है, तब मैं प्राण तथा बुद्धिवाला होकर इसे दण्ड कैसे दे सकता हूँ।

भाग ९६ 'निन्दक नियरे राखिये' (श्रीताराचन्दजी आहूजा) प्रशंसा और निन्दा दो परस्पर विराधी तत्त्व हैं। कह सकते हैं, जो दूसरेको दोषदर्शनका अधिकार देना मनके अनुकूल होनेके कारण जहाँ प्रशंसा हमें मिस्रीकी नहीं चाहता। वस्तुत: अपनी निन्दा अथवा आलोचना न तरह मीठी लगती है, वहीं मनके प्रतिकृल होनेके कारण सह पाना एक मानवीय कमजोरी है। हम प्रशंसा तो निन्दा हमें नीमकी निम्बोलीकी तरह कड़वी लगती है। सुनना पसन्द करते हैं, किंतु निन्दा अथवा आलोचनासे अत: स्वाभाविक रूपसे प्रशंसा करनेवालेके प्रति हमारा बचना चाहते हैं, चाहे वह कितनी भी सही क्यों न हो, राग हो जाता है और निन्दा करनेवालेके प्रति हमारा द्वेष जबिक वस्तुस्थिति यह है कि निन्दा-आलोचना प्रशंसाका हो जाता है। आत्मवेत्ताओंका कथन है कि आत्मोत्कर्षके दूसरा पक्ष है। दोनों एक सिक्केके ही दो पहलू हैं। जो लिये न तो राग अच्छा है और न द्वेष। इसलिये एक व्यक्ति जितना प्रशंसित और चर्चित होता है, उसकी आत्मान्वेषीको दोनों ही स्थितियोंसे यथासम्भव बचना उतनी ही निन्दा-आलोचना भी होती है। बुरे कर्मोंमें चाहिये। परंतु क्या एक सामान्य व्यक्तिके लिये ऐसा संलग्न लोगोंकी निन्दा अलग बात है, जबकि उनकी करना सम्भव है, इस आलेखमें हम इसी विषयपर प्रशंसा करनेवाले लोग भी समाजमें मिल जायँगे। किंचित् चर्चा करेंगे। प्राय: हम अपनी प्रशंसा करनेवालोंसे प्रसन्न हो मनुष्यके जीवनमें कई बार ऐसी परिस्थितियाँ जाते हैं और उन्हें अच्छा होनेका प्रमाणपत्र भी दे डालते उपस्थित हो जाती हैं, जो असह्य होती हैं और मनको हैं। यही नहीं, हम उन्हें अपना मित्र और हितैषी भी मानने लगते हैं। दूसरी ओर जो हमारी आलोचना या खिन्न एवं विषादग्रस्त कर देती हैं। इस प्रकारकी परिस्थितियोंमें एक है, किसीके द्वारा आलोचना अथवा निन्दा करते हैं, हम उनसे नाराज हो जाते हैं और कभी-निन्दा किया जाना। सामान्यतः मनुष्य अपने लिये कभी तो उन्हें अपना शत्रु मानकर अनुचित व्यवहार प्रशंसाके शब्द ही सुनना चाहता है। यह मानवीय करने लगते हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्यको कमजोरी है, जिससे उबरना इतना आसान नहीं होता, स्वभावसे ही चापलूसी पसन्द होती है और वह अपना जितना कि हम सोच लेते हैं। किसी व्यक्तिमें लाख प्रभाव दिखाने लगती है। झूठी प्रशंसासे भी हम प्रसन्न दोष-दुर्गुण भरे हों, उसे अपनी किमयाँ दिखायी नहीं हो जाते हैं। वास्तविकता यह है कि अधिकांश मामलोंमें देतीं। यदि किसी व्यक्तिको अपने दोष दिखायी दे भी प्रशंसा सत्यपर आधारित नहीं होती है, लेकिन फिर भी जायँ, तब भी वह अपने स्वभावकी बजाय परिस्थितियोंको वह हमें गुदगुदाती है, आह्लादित करती है। ही जिम्मेदार ठहरानेकी कोशिश करता है; क्योंकि मनुष्य सत्य तो यह है कि हमारी प्रशंसा यदि सत्य भी है, तब भी हमें उससे कोई लाभ होनेवाला नहीं और

सत्य तो यह है कि हमारी प्रशसा यदि सत्य भी स्वभावत: अपनेको अच्छा और गुणी ही मानता है। है, तब भी हमें उससे कोई लाभ होनेवाला नहीं और प्रत्येक आदमीको अपनी कमीज दूसरेकी कमीजसे वह असत्य है तो हमारी हानि होना तय है। झूठी प्रशंसा स्वच्छ ही दिखायी देती है। हम इतने असहिष्णु और अनुदार होते हैं कि किसी औरके द्वारा इंगित की गयी त्रुटिको सच्ची है, तथ्योंपर आधारित है तो उससे हमें लाभ ही सहन नहीं कर पाते। दूसरे शब्दोंमें इसे हम अहंकार भी होगा। इससे हमें अपनी भूलका पता चल जायगा और

संख्या २] क्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक	
<del>====================================</del>	वह उन दोषोंकी ओरसे हमें सतर्क करती है।
कबीर साहिबजीका तो यहाँतक कहना है कि निन्दकके	महाभारतके युद्धके समय जब अर्जुन मोहग्रस्त होकर
	3
लिये प्रेमपूर्वक अपने निवास-स्थानपर रहनेहेतु एक कुटी	पलायनकी बातें करने लगा था, तब भगवान् श्रीकृष्णने
बना देनी चाहिये; क्योंकि वह बिना जल और साबुनके	उसकी आलोचना करते हुए कर्मयोगके प्रति उसकी
हमारे स्वभावको निर्मल कर देगा—	जिज्ञासाको जाग्रत् किया था। अर्जुनकी भर्त्सना करते
निंदक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय।	हुए भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय॥	कुतस्त्वा कश्मलिमदं विषमे समुपस्थितम्।
निन्दा-आलोचनाको यदि सहज भावसे लिया	अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥
जाय तो व्यक्तिको अपने उत्कर्षमें इतनी सहायता	क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
मिलती है कि उसे सहज ही अपने सुधारका दिशाबोध	क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥
होने लगता है। हमें अपने दोषों या कमियोंका उतना	(२।२-३)
पता नहीं लगता, जितना कि दूसरोंको लगता है।	अर्थात् हे अर्जुन! तुम्हें इस विषम स्थलमें यह
स्वदोषदर्शनसे परदोषदर्शन कहीं अधिक आसान और	अज्ञान किस कारण उत्पन्न हुआ ? क्योंकि यह न तो
रुचिकर होता है। अपने व्यवहार अथवा आचरणकी	श्रेष्ठजनोंद्वारा आचरण किया गया है तथा न स्वर्ग और
परख दूसरोंके द्वारा की गयी आलोचना और निन्दाके	कीर्ति ही देनेवाला है। इसलिये हे अर्जुन! नपुंसकताको
प्रकाशमें भलीभाँति की जा सकती है। कहते हैं कि	मत प्राप्त हो, तुम्हारे लिये यह उचित नहीं। तुम्हारे
सन्त पलटूको जब यह पता चला कि उसके निन्दककी	हृदयमें जो तुच्छ दुर्बलता उत्पन्न हो गयी है, उसे
मृत्यु हो गयी है, तो वे बिलख-बिलखकर रोने लगे।	त्यागकर तुम युद्धके लिये खड़े हो जाओ। भगवान्द्वारा
 रोनेका कारण पूछनेपर उन्होंने कहा कि ऐसा सेवक	की गयी इस भर्त्सनाका प्रभाव यह हुआ कि अर्जुनकी
कहाँ मिलेगा, जो बिना पारिश्रमिक लिये अपनी जिह्वासे	सोयी हुई चेतना जाग्रत् हो गयी और उसने युद्धमें इतना
मेरी गंदगी साफ करता हो।	साहस एवं पराक्रम दिखाया कि अविजित दिखायी
ब्रह्मानन्द सरस्वतीजीका कथन है—'यदि कोई	
तुम्हारी निन्दा करे, तो तुम्हें भीतर-ही-भीतर प्रसन्न होना	अाज विश्वमें लोकतांत्रिक प्रणालीको अन्य शासन-
चाहिये; क्योंकि निन्दा करके वह तुम्हारा पाप अपने	प्रणालियोंसे इसलिये श्रेष्ठ और सफल बताया जाता है,
सिरपर ले रहा है।'	क्योंकि इसमें सत्तारूढ़ पक्षके अतिरिक्त एक सबल
महापुरुषोंका कथन है कि अपनी निन्दा-आलोचना	विपक्ष भी होता है, जो सरकारकी त्रुटियों और गलतियोंपर
अथवा स्वदोषदर्शनमें रुचि होना इस बातका प्रमाण	अपनी पैनी-नजर बनाये रखता है। इसी कारण शासक
है कि हमने अपने घरकी देखभाल करनी आरम्भ	अपनी मनमानी नहीं कर पाता और आलोचनाके भयसे
कर दी है। यदि कोई व्यक्ति अपनी निन्दाको सकारात्मक	वह संविधानके अनुसार कार्य करनेको बाध्य होता है।
भावसे स्वीकार करने लगे तो इसमें हित और उत्कर्ष	परंतु आलोचना केवल आलोचनातक सीमित नहीं होनी
साधन ही होता है। कई बार यह निन्दा अपने	चाहिये, अन्यथा वह अच्छे कार्योंमें भी अवरोधक
प्रकट-अप्रकट दोषोंकी ओर इंगित करती है तथा	बनकर खड़ी हो जायगी।
उन्हें सुधारनेकी प्रेरणा देती है, तो कई बार जब	ज्ञानीजनोंका मत है कि निन्दा-आलोचनासे रुष्ट
अतिरंजित ढंगसे निन्दा-आलोचना की जाती है, तो	होने, दुखी होने अथवा प्रतिकारकी भावना रखनेकी

निन्दासे दोषोंका विनाश होता है। दोषोंके विनाश होनेसे अपेक्षा उसका रचनात्मक उपयोग करनेकी ही बातपर विचार करना चाहिये। यदि निन्दा अथवा आलोचनाको आत्मोत्कर्ष और आत्मपरिष्कारका मार्ग प्रशस्त होता है। सहज भावसे स्वीकार कर लिया जाय तो उससे दोषों प्रचलित कहावत है कि दृष्टि ऐसी हो, जो निन्दाके

एवं दुर्गुणोंका विनाश होता है। हितोपदेशकी प्रसिद्ध उक्ति है—'ज्योतिषा बाधते तमः निन्दया बाधते दोष:।' अर्थात् प्रकाशसे अन्धकारका नाश होता है और

'न मे भक्तः प्रणश्यति'

# श्रीधर स्वामी संस्कृतके प्रकाण्ड पंडित तो थे ही,

उनकी आध्यात्मिक अभिरुचि और परम सत्यकी खोज

भी अत्यन्त तीव्र थी। उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीमद्भागवतपर जो टीकाएँ लिखी हैं, वे विद्वज्जनोंमें

अत्यन्त सम्मानसे देखी जाती हैं। अपने गृहस्थ-जीवनमें वे दक्षिण भारतके एक

राजदरबारमें सम्मानित थे। यद्यपि उनके मनमें परम सत्यको प्राप्त करनेकी उत्कण्ठा और संसारका नश्वर स्वरूप तीव्रतासे उभरता रहता था, किंतु वैवाहिक

जीवनका कर्तव्यबोध उन्हें बाँधे रखता था। उन्हें लगता था कि उनके गृहत्यागसे उनकी पत्नी और अल्पायु पुत्र असहाय हो जायँगे। इसी बीच उनकी पत्नीका अकस्मात्

देहावसान हो गया। अतः पुत्र-पालनकी चिन्ता उन्हें अधिक विचलित करने लगी।

एक दिन अकस्मात् उन्होंने देखा कि कमरेकी छतसे छिपकलीका एक अण्डा नीचे गिरकर टूटा और उसमेंसे

एक छोटा छिपकलीका बच्चा निकला। वह अपना मुँह बार-बार खोल रहा था, जैसे उसे भूख लगी हो। श्रीधर पंडितको लगा कि यह जीव कुछ देरमें मर जायगा;

क्योंकि उसका आहार कहाँसे मिलेगा! तभी एक मक्खी कहींसे उड़ती हुई उस अण्डेके टूटे हुए छिलकोंके पास

आयी और उनपर चिपक गयी। उस छिपकलीके शिशुने अपनी जीभ लहराकर उसे निगल लिया। श्रीधर पंडितको अचानक अपने विचलित जीवनका

इस सम्पूर्ण अस्तित्वका नियन्त्रण करते हैं और उनकी अपने पुत्र-पोषणकी चिन्ता व्यर्थ है। पंडितजी संन्यस्त

होकर श्रीधर स्वामी बन गये और उनके अल्पायु पुत्रको एक धनाढ्य व्यक्ति ले गये और उसका उचित लालन-पालन किया।

प्रकाशमें अपने दुर्गुण-दोषोंको देख सके और सिहष्णुता

ऐसी होनी चाहिये, जो अपनी निन्दा एवं आलोचनाको

श्रीमद्भगवद्गीताके नवें अध्यायके श्लोक—

बिना किसी प्रतिकारके सहन कर सके।

'····कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति'-की व्याख्यामें श्रीधर स्वामीने इस बातपर जोर दिया है कि हर परिस्थितिमें प्राणी-पदार्थोंके साथ भगवत्कृपाकी

धारा बनी रहती है और आवश्यकतानुसार परिस्थितियोंका निर्माण करती है। गीताके इस श्लोकमें 'कौन्तेय प्रतिजानीहि' (हे

अर्जुन, तु प्रतिज्ञापूर्वक घोषित कर दे कि मेरे भक्तका कभी नाश नहीं होता)-पर विचार उठता है कि भगवान् कृष्ण स्वयं भक्त-संरक्षणकी घोषणा क्यों नहीं

करते ? अर्जुनसे ऐसा करनेको क्यों कहते हैं ? भगवत्प्रेमी सन्तोंका मत है कि भगवान् स्वयं तो अपनी प्रतिज्ञा

कभी-कभी तोड़ भी देते हैं, किंतु भक्तकी प्रतिज्ञापर आँच नहीं आने देते। महाभारत-युद्धमें भीष्म पितामहकी

भाग ९६

प्रतिज्ञा बचानेको उन्होंने शस्त्र ग्रहण न करनेकी अपनी प्रतिज्ञा तोड़ डाली थी। अतः भक्तवत्सलताकी अनुपम

धारा प्रवाहित करते हुए वे अर्जुनको अपनी ओरसे

प्रतिज्ञाकी घोषणा करनेकी बात कहते हैं। प्रभुकी यही भक्तवत्सलता सन्तोंका जीवन-आधार है। समाभिताराष्ट्रित Distactord Server list par /राउपराप्ति planta का अपने प्रसारित प्राप्ति का कार्य है । स्वरंप होता है । स्वर

मान और अभिमान संख्या २ ] मान और अभिमान ( श्रीगणेशलालजी, कर्णप्रवासी ) मान और अभिमानका एक पहलू सामाजिक होता है प्रवेश नहीं कर सकते हैं, संत-सत्पुरुषोंका ऐसा ही कथन और दूसरा आध्यात्मिक। सामाजिक आदर्श हो या आध्यात्मिक, है। प्रकृतिप्रदत्त क्षमता हर किसीको प्राप्त है, किंतु जो उसका उपयोग और सद्पयोग करते हैं, वे ही लाभान्वित होते हैं। उसके उदाहरणके लिये अशिक्षितोंको सामने नहीं रखा जा सकता। सभ्य, शिक्षित, सुसंस्कृत व्यक्तियोंके वाणी-विचार, यह एक निर्विवाद सत्य है। फिर भी क्या हम इस कथनको व्यवहार और कार्यको सामने रखकर ही किसी आदर्श या माननेके लिये तैयार हैं ? उदाहरणको हम तौल या परख सकते हैं। समाजमें प्रभु-शक्तिकी प्रधानता है। एक मनुष्य दूसरेको अपने प्रभावमें रखकर अधिक-से-अधिक स्वार्थसाधना हमें चाहे सामाजिक मान-प्रतिष्ठा कितनी भी प्राप्त हो, किंतु मानवजीवनके लिये उसका विशेष महत्त्व नहीं करनेको अपना मान समझते हैं—जब कि वह मान नहीं माना जाता है। देखनेमें यह आता है कि जब मनुष्य सामाजिक स्वच्छ अभिमान है। दायरेसे बाहर निकलकर जीवन-चेतना प्राप्त करते हैं कि हम दूध-जैसे सफेद वस्त्र पहनते हैं, चौमंजिली यह जीवन वह नहीं है, जो हम समझ रहे हैं, तब उसे ऐसी अट्टालिकाओंमें रहते हैं, तो इसका अर्थ यह थोडे हो सकता प्रेरणा प्राप्त होनेपर उनकी सामाजिक भूमिका समाप्त हो है कि हम बहुत सभ्य और शिक्षित हैं! सभ्यता और शिक्षाका जाती है। वे किसी अज्ञात लक्ष्यकी ओर बढने लगते हैं। प्रतीक तो हमारा वाणी-विचार, कार्य-व्यवहार, हमारी भावना-उनका जीवन-स्तर ही बदल जाता है। चेतना है। भारतीय वेदों-उपनिषदोंका यही दिशासंकेत रहा है अभिमानको छोडे बिना आजतक कोई भी मानतक कि जबतक मानवकी आध्यात्मिक चेतना जाग्रत नहीं होती, नहीं पहुँच सके हैं। उसके लिये उदाहरण देनेकी आवश्यकता तबतक उसका जीवन सफल नहीं माना जा सकता है। यह नहीं है। मान और अभिमानके बीचमें एक शब्द स्वाभिमानका सफलता क्या है ? हममेंसे कितने लोग इसे समझ सकते हैं ? आता है। उसे भी समझ लेना आवश्यक है कि यह स्वाभिमान यह कथमपि अत्युक्ति नहीं कि जबतक हम सामाजिक क्या है, इसका क्या अर्थ होता है ? दायरेमें रहते हैं, हमारे जीवनकी सामाजिक भूमिका बनी हम जो कुछ हैं, उतना ही मानें, उससे अधिक मनवानेकी रहती है, हम मानव-जीवनको सही मान नहीं दे सकते हैं। कोशिश न करें, तो यह हमारा स्वाभिमान होगा। मानका तात्पर्य-मूल्यांकन होता है। इसका अर्थ यह नहीं किसीने ऐसा कहा है-मानतक पहुँचनेके लिये हम समझा जाय कि हम केवल पैसोंसे ही मूल्यांकन कर सकते अभिमानको अपना साथी न बनायें। अगर ऐसा किया तो हैं ? मुल्यांकनके और भी प्रकार होते हैं। उसका परिणाम वैसा ही हो सकता है, जैसा कि अभिमानको हम किसी चीजका सही मुल्यांकन करनेमें समर्थ कब जीवनकी सफलता मानकर होता है। हो सकते हैं, जब हम उस चीजको जान-समझ सकें, उसकी शाश्वतकी अवहेलना करके अशाश्वतकी आराधना उपयोगिताओंको जान सकें, उस चीजकी खूबी-खासियतको करना कहाँतक सही है ? इसे समझनेमें क्या हम अपने ज्ञानका, विवेकका सद्पयोग नहीं करते हैं ? आत्माके सामने भी समझ सकें। सामाजिक जीवनके दायरेमें भौतिक भावनाओंके बीच शरीरका क्या अस्तित्व है? रहकर हम अपने मानव-जीवनका अभिमान जरूर कर सकते वैसे यह सत्य है कि कर्मयोगके लिये शरीरकी महत्ता हैं, परंतु उसका सही मूल्यांकन नहीं कर सकते, जिसे मान जरूर मानी जानी चाहिये। किंतु जीवनका लक्ष्य कर्मफलका कहा जाता है। यह तथ्य सरल होते हुए भी ज्ञानगम्य है। त्याग या भगवत्प्राप्ति माना गया है। ऋषि-महर्षियोंके जीवनसे, शिक्षा और सम्पत्तिके अभिमानमें रहकर हम इस सुगम तथ्यको वेदोपनिषदोंके अध्ययनसे, यह निर्विवाद सिद्ध है कि हम समझ भी नहीं सकेंगे तो उसका मान भला कैसे कर पायेंगे? अभिमानका त्याग कर ही अपने मानव-जीवनका सही मान शरीराभिमानको साथ लेकर हम आध्यात्मिक भूमिकामें प्राप्त कर सकते हैं।

## मनुष्य-जन्मकी सार्थकता

िभाग ९६

( श्रीसलिलजी पाण्डेय )

ईश्वरकी संरचनामें सर्वाधिक श्रेष्ठ स्थिति मनुष्यकी

जिसके घर चली जाय, उसकी गाय। पुलिस अधिकारीकी

है। मानव-शरीर पानेके लिये देवता भी तरसते हैं।

बातका पूरे इलाकेने समर्थन किया। गाय छोड़ी गयी,

वह छूटते ही दौड़ते हुए किसानके घर चली गयी। पूरे देखा जाय तो सबसे उच्च पायदानपर मानव है।

इलाकेमें एकसे बढ़कर एक ज्ञानी लोग जिस बातका

जानवर उससे नीचे हैं। लेकिन जो जितनी ऊँचाईपर

रहता है, वह जब गिरता है तो किस निम्न स्तरपर

निर्णय नहीं कर पा रहे थे, वह निर्णय गायने स्वयं कर

गिरेगा, कहा नहीं जा सकता। सबसे उच्च शिखरपर दिया।

बैठा मनुष्य कभी-कभी जानवरसे भी नीचे चला जाता

है। किसी मनुष्यपर रोष उतारनेके लिये प्राय: जानवरोंसे

तुलना कर दी जाती है, लेकिन जानवर भी अपने पेट-

पालनके लिये जो कुछ करता है, सिर्फ वही करता है।

जंगलका सबसे खूंखार जानवरोंका राजा शेर होता है,

लेकिन उसका भी अपना सिद्धान्त है। एक तो वह

अपने आहारके लिये शिकार खुद करता है और जूठे,

बासी मांसका भक्षण नहीं करता। इसके अलावा जब

उसका पेट भर जाता है तो बचे हुए हिस्सेको बाँधकर

संग्रह नहीं करता। उसे छोडकर चल देता है। तब बचे

हुए हिस्सेका भक्षण दूसरे असहाय जानवर करते हैं।

पर्यावरणविद् शेरको जंगलका रक्षक बताते हैं। जानवरोंमें

गाय तो माताके समान है। कुत्ते तो इतने कामलायक

हैं कि जब कहीं कोई गम्भीर घटना हो जाती है तो

प्रशिक्षित कुत्ते आगे-आगे चलते हैं, और पुलिस

अधिकारी उनके पीछे-पीछे चलता है। यहाँ एक

गायकी चोरीकी घटना समीचीन है। एक गरीब

किसानकी गाय जो वह चरनेके लिये छोड़ देता था,

उसे एक दबंग व्यक्तिने अपने घरमें बाँध लिया। चार-

छ: माहकी खोजबीनमें किसानको अपनी गायका पता

चला। वह दबंग व्यक्तिसे गाय वापस माँगने गया तो

उसने किसानको मारपीट दिया। मामला पुलिसतक

कहा कि गायको कुछ किलोमीटर दूर छोड दिया जाय,

पहुँचा। दोनों पक्ष अपनी गायका दावा कर रहे थे। पुलिस अधिकारीने विवेकका परिचय दिया। उसने

बच्चे बडोंकी नकल करते हैं।

क्या यह कहना उचित है कि यह मानव-शरीर श्रेष्ठ

योनि है, जिसे पानेके लिये देवता तरसते हैं। यही सब

गाँवसे लेकर महानगरोंतक धोखाधडी, तिकडम,

नारी-अस्मिताका चीरहरण जिस घटिया स्तरतक हो

रहा है, वह जानवरोंसे भी निचले स्तरका है। बड़े

घनिष्ठसे दीखनेवाले दोस्त ही नहीं, खुद घरके खूनके

रिश्तेसे बँधे लोग क्या नहीं कर रहे हैं। सक्षम होते

ही माता-पिताको वृद्धाश्रमका रास्ता दिखाना क्या यह अच्छा संस्कार है। सामान्य व्यक्ति ही नहीं, बड़े-बड़े

पदोंपर बैठे लोगोंकी करनीका खुलासा होता है तो

लोग दाँतोंतले अँगुली दबा लेते हैं। सार्वजनिक जीवनमें

आदर्श, सत्य, संस्कार, धर्मका प्रवचन देनेवालोंतककी

करनी आये दिन लोगोंके सामने आती है। ऐसी स्थितिमें

कारण था कि राजकुमार सिद्धार्थको मानव-जीवनसे

वितृष्णा हो गयी। गोस्वामी तुलसीदासजीकी आत्माने

कि जब मनुष्य घटिया स्तरकी सोच छोड़ देगा, उसी

होगा, यह तो फिलहाल स्पष्ट नहीं है, लेकिन

कुसंस्कार उसके परिवारमें घुस गया तो उसकी अगली

पीढ़ी गलत रास्तेपर प्राय: चली जाती है; क्योंकि घरके

उन्हें झकझोर दिया। वाल्मीकि भी पहले लूट-पाट,

छीना-झपटी करनेवाले डाकू थे। नफरत हुई तो वे सन्त

हो गये। इन श्रेष्ठजनोंके जीवनसे यह सीख मिलती है

समय उसका मनुष्यके रूपमें जन्म सार्थक होगा, यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसका अगला जन्म क्या

संख्या २ ] विरह-सागरका चतुर नाविक विरह-सागरका चतुर नाविक ( पं० श्रीगोविन्दप्रसादजी मिश्र ) भगवान् श्रीरामचन्द्रके वियोगकी असह्य व्यथा सह चतुर नाविक कौन था? वे थे महामना महात्मा सकनेमें असमर्थ महाराज दशरथकी सारी इन्द्रियोंमें जब भरत! जिन्हें संसार भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके छोटे शिथिलता आ गयी, तब महारानी कौसल्याजीने आर्त भाईके रूपमें पहचानता है। होकर हाथ जोड़ विनय करते हुए कहा-भरतजी ननिहालसे लौटकर सीधे अपनी माता कैकेयीके महलमें पहुँचे। कैकेयीने सुना—पुत्र आ रहा नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥ है, जिसके लिये इतना सब कुछ मैंने किया है। करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू।। धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू॥ आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि॥ परन्तु दशरथजी प्रेम-नैयाको कथित विरह-सागरमें और आरती सजा दौड़कर द्वारपर ही जा पहुँची, आगे न खे सके और पतवार हाथोंसे छोड़ते हुए कहने माँको देखते ही भरतजी पूछते हैं-लगे— कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता।। 'कपट नीर भिर नैन' माता कहने लगी— सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा॥ और इस असफल कर्णधारने कृदकर प्राण दे दिये। मैं सकल सँवारी-----। बस, सारी अयोध्या अनाथ और असहाय हो गयी। चारों कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ॥ ओरसे शोक-सागर उमड़ पड़ा। इधर विरह-सागरमें कैकेयीकी भावना थी कि भरत यह सुनकर सुखी नैया डाँवाडोल थी ही। उन्मत्त विरह-सागर अपनी होंगे, परंतु हुआ कुछ और ही-उत्ताल तरंगोंकी चपेटसे अयोध्यावासियोंको त्रस्त कर ही तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल ब्याकुल भारी॥ नगरवासियोंने जिस परिणामका अनुमान किया था, रहा था। इनकी दशाका वर्णन करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं— ठीक ही निकला— बिषम बियोगु न जाइ बखाना। "" " " " " " " " " " " " " ॥ 'राजु कि भूँजब भरत पुर' नगर नारि नर ब्याकुल कैसें। निघटत नीर मीनगन जैसें॥ मूर्छासे उठकर भरतजी कारण पूछते हैं-माता! सिंह न सके रघुबर बिरहागी। ... ... ... ... ... ... ॥ पिताजी अचानक स्वर्गलोक कैसे सिधार गये ? कारणका ज्ञान होनेपर 'थकित रहे थिर मौनु' बस, भरतजी वहीं आदि। माताएँ रामजीकी विरह-वेदनाके साथ-साथ वैधव्य अपनी माताको विरहसागरसे उठाकर बाहर बिठा देते हैं आदि शोकसे विकल हो रही थीं; सारे नर-नारियोंपर और पतवार अपने हाथोंमें ले लेते हैं। भीषण रूप महान् विपत्ति टूट पडी थी, कोई किसीको ढाँढस न धारणकर उपयुक्त वचन कहते हैं-बँधाता था। अयोध्या शोक और विरह दो सागरोंकी हंसबंसु दसरथु जनकु राम लखन से भाइ। भयानक तरंगोंमें कभी डूबती, कभी उतराती थी। जननी तूँ जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ॥ उधर कैकेयी अपने स्वार्थकी मस्तीमें नैयाको पतवारसे पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। मीन जिअन निति बारि उलीचा॥ ... ... ... ... ... ... जनमत काहे न मारे मोही॥ सूनी या भँवरकी ओर घसीटे लिये जा रही थी। किसीको परिणामका ज्ञान न था। उसी समय कुशलकवि बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा॥ तुलसी एक चतुर, गम्भीर, नीतिज्ञ, शीलवान् नाविकको भूपँ प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मित हरि लीन्ही।। खोजकर ले आते हैं और उस डूबती नैयाकी पतवार भे अति अहित रामु तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही॥ उसके हाथोंमें सौंप भीषण भँवरसे बचा लेते हैं। वह राम बिरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।

और यदि उन्हें इतना ही गुमान हो गया होता कि भरत मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि॥ और अन्तमें उस माताको जो विरह-व्यथाके इस मन्त्रणामें है, तो रामायण भी तुलसीकी दूसरी ओर चली जाती। इसीलिये भरतजी शपथ लेकर अपना बयान इतिहाससे अनिभज्ञ थी, तिरस्कृत करके कह ही डाला— देते हैं-'ऑरिव

में तेरा मुँह भी नहीं देखना चाहता।

इसके बाद उन्हें अपने भविष्यके कर्तव्यका ज्ञान

आया और सीधे माता कौसल्याके पास पहुँचे। यह

आवश्यक था कि जिसका सबसे अधिक रूपमें बिगाड

हुआ था, जो पति और पुत्रके वियोगमें डूब-सी रही थी,

जिसके हृदयमें यह भावना हो सकती थी कि भरत ही

मेरे इन दु:खोंका मूल है, और आशंका थी कि वह आर्त

निवेदन आरम्भ करते हैं-कैकइ कत जनमी जग माझा। जौं जनिम त भई काहे न बाँझा॥ कुल कलंकु जेहिं जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही॥ को तिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥

होकर प्राण न दे दें। वहाँ पहुँचकर भरतजी अपना

पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥ आदि।

कौसल्याके सामने रख दिया। भरत-जैसे सरल-शुद्ध हृदय और नीतिज्ञके लिये यह उचित ही था, नहीं तो

Hinduism Dissord Server https://dse.gg/dharma

धिग मोहि भयउँ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूषन भागी॥ —कहकर अपना छलविहीन हृदय खोलकर माता जे अघ तिय बालक बध कीन्हें । मीत महीपति माहुर दीन्हें॥ जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव किब कहहीं।। ते पातक मोहि होहुँ बिधाता । जौं यहु होइ मोर मत माता॥

छल बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी॥

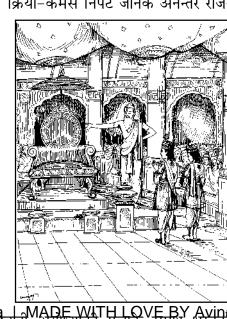
जे अघ मातु पिता सुत मारें। गाइ गोठ महिसुर पुर जारें॥

तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर॥ आर्त होकर बहुत-कुछ कह डाला, कौसल्याजीका हृदय द्रवित होकर कह उठा— मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं।। अस कहि मातु भरतु हियँ लाए । थन पय स्त्रवहिं नयन जल छाए।।

यहाँ कौसल्याजीके हृदयकी उज्ज्वलताका प्रमाण

जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर।

मिल जाता है और भरत नि:शंक होकर आगे बढ़ते हैं। यदि तुलसीसे चतुर कविने अपनी माताकी अवहेलना करा रामकी मातासे यह न कहलवाया होता तो अयोध्याकी विरह-नैयाका नाविक-पद भरत न पाते और न जाने क्या अनर्थ हो गया होता! क्रिया-कर्मसे निपट जानेके अनन्तर राजसभा हुई,



संख्या २] विरह-सागरव	न चतुर नाविक २७
******************************	**********************************
भार सम्हालनेका अनुरोध करते हैं। धर्म, नीतियुक्त	जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकहिं आँक मोर हित एहू॥
उपदेश देते हुए कहते हैं(यह भरतकी परीक्षाका	धन्य भरत! तुम्हारे बिना यह कौन कह सकता
दूसरा समय था)	था। फिर कहते हैं—किसी योग्य व्यक्तिको राज्य
सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।	दीजिये। मोहवश यदि मुझे राज्य आपने दिया, तो
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥	अयोध्याका राज्य रसातलको चला जायगा।
अस बिचारि केहि देइअ दोसू। ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू॥	बिनु रघुबीर बिलोकि अबासू। रहे प्राण सहि जग उपहासू॥
रायँ राजपदु तुम्ह कहुँ दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा॥	कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
नृपहि बचन प्रिय निहं प्रिय प्राना । करहु तात पितु बचन प्रवाना ॥	मेरा इससे अधिक क्या हित होगा। मेरा हित तो
परसुराम पितु अग्या राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥	सब मेरी माताने ही बना दिया है। राम-सियको वनमें
भावार्थ यह कि अपनी माताकी अवज्ञा की सो	भेज दिया, पिताको विदाकर वैधव्य सुख ले लिया
तो ठीक, पिताकी आज्ञा तुम्हारे वंशमें सब मानते आये	और प्रजा तथा माताओंको शोक–सन्ताप दे दिया।
हैं, अत: तुम भी राज्यपद लेकर अनुचित-उचितका	मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू॥
विचार छोड़ अपना कर्तव्य निभाओ।	मेरी सब बातें तो विधाताने ही बना दीं, आप
बेद बिदित संमत सबही का। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका॥	वृथा ही प्रयास करते हैं।
कौसल्याजीने भी कहा—	कैकइ सुअन जोगु जग जोई । चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई॥
। पूत पथ्य गुर आयसु अहई॥	मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सिय रामु प्रानिप्रय नाहीं॥
माता और गुरुकी इतनी प्रभावशाली वक्तृता उस	परम हानि सब कहँ बड़ लाहू।
चतुर नाविकपर क्या असर डालती है, यह देखते ही	मेरे दुर्दिन हैं, आपका दोष नहीं है। आप सब
बनता है। वाह रे भरत! इस परीक्षामें भी तू सफलतासे	संशय—प्रेमवश जो उचित है, वही कह रहे हैं। सिवा
उत्तीर्ण हो गया। पिताकी आज्ञा, माताका आग्रह,	सियारामके मुझे इस दुर्दैवसे निकालनेवाला कौन है?
कौसल्याका अनुरोध, गुरुका उपदेश—इन सबको किस	वे ही यह कह सकते हैं कि 'मोर मत नाहीं' मुझे
सुन्दरतासे अलग रख देता है। यदि यहाँ उलझ गया	जगके उपहासका डर नहीं, परलोकका भी सोच मुझे
होता तो तुझे कौन पूछता। क्या ही सुन्दर शब्द हैं—	नहीं, परन्तु दुःख इतना ही है—मेरे लिये मेरे जीवनके
गुर पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भिल जानी।	सर्वस्व रामने संकट सहे। मेरा अन्तमें यही कहना है—
जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें। तदपि होत परितोषु न जी कें॥	बिना रामके चरण देखे मेरे हृदयकी जलन न जायगी।
ऊतरु देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनिहं न साधू॥	देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरिन न जाइ।
पिताका स्वर्गवास, सियारामका वन-गमन और	फिर कहते हैं—
मुझे राज्य करनेके लिये सबका आग्रह, आप मेरा इसमें	एकहिं आँक इहिंहं मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं॥
हित समझते हैं, मेरा हित केवल सीतापतिकी सेवामें	बस, यहींपर माताएँ, पुरजन, सभी लोग भरतको
निहित है; परंतु उस निहितको माताकी कुटिलताने हर	पतवार सौंप देते हैं और उन्हें विरहसागरका चतुर
लिया। शोक-समाज लेकर मैं क्या राज्य कर सकूँगा?	नाविक मान लेते हैं!
नहीं, बिना विरतिके ब्रह्म-विचार किस कामका? रुग्ण	लोग बियोग बिषम बिष दागे । मंत्र सबीज सुनत जनु जागे॥
शरीरको बहु भोग सब व्यर्थ हैं। जैसे बिना जीवके	सब एक स्वरसे कहते हैं—
शरीर, वैसा ही मेरा राज्य होगा। मेरी तो एक ही	अवसि चलिअ बन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह।
अभिलाषा, एक ही प्रार्थना और एक ही ध्येय है।	सोक सिंधु बूड़त सबहि तुम अवलंबनु दीन्ह॥

और यहीं कौसल्या महारानीके वचन हैं। श्रीरामचन्द्रजीके अनन्य सेवक— भगवान् जिन्होंने भरतको इस विरहसागरकी नैया कुशलतासे परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा॥ यह वचन दशरथ-मरणके समयके—'करनधार खेते हुए, अयोध्यामें संजीवनी लाते समय देखकर तुम्ह अवध जहाजू 'के साथ भरतपर घट जाता है और कहा था— भरतजी प्रात:काल ही इस जहाजमें प्रिय पथिकोंको 'तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत।' बिठाकर चित्रकूटको चल देते हैं। क्या ही अनोखा भरत बाहुबल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार। दूश्य है? मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवनकुमार॥ चित्रकूटकी राहमें नाविक (निषाद) बिना पहचाने वे परिचितपोत पवनकुमार भरतकी दशासे प्रभावित विरोधके साथ जहाजको रोकनेकी भूल करना चाहते होकर कहते हैं-हैं, पर कपटहीन नाविक अपनी क्षमतासे झूमता चला जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती॥ जाता है। फिर आगे चलकर लक्ष्मणजीको भ्रम होता रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥ है; परन्तु वहाँ भी इन्हींकी विजय होती है। परन्तु जगत् रिपुरन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत।। परीक्षा-पर-परीक्षा प्रतिक्षण करता रहता है। तीसरी बस, भरत यहींपर संयोगके गम्भीर समुद्रमें इस बार भरत नाविककी परीक्षा चित्रकृटमें रामजीके समक्ष जहाजको भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको सौंपकर फिर देते हैं। यहाँ भी तुलसी कहते हैं— विरहसागरमें किस सुन्दरतासे मग्न हो गये; संसार होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥ उसीकी यादकर करुण-रसकी उपासना करता है। भरतजी नगरवासियों, माताओं और गुरुको साथ पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर। ले भगवान्के स्वागतको चल देते हैं। अहा! क्या सुख मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर॥ है! विरह-सागरका नाविक भवसागरके नाविकको भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भी भरत-विरह-सागरका मन्थन करनेपर प्रेम-अमृत ही पाते हैं और जगत्-अपना भार सौंपता है— हितके लिये उसे अयोध्यावासियोंको सौंप देते हैं। राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी। परीक्षाके अन्तमें उन्हें चरण-पादुकाओंका प्रमाणपत्र अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजिह मिले प्रभु त्रिभुअन धनी॥ दिया जाता है, जिसे लेकर भरत 'मगन मन' इतना प्रभु मिलत अनुजिह सोह मो पिहं जाति निहं उपमा कही। बडा भार हँसते-हँसते अपने ऊपर लेकर अयोध्या लौट जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही।। आते हैं। बुझत कृपानिधि कुसल भरतिह बचन बेगि न आवई। भरतजी-सा चतुर नाविक विरह-सागरमें अयोध्याके सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई॥ इस जहाजको झुमते हुए खेता चला जाता है। दो-चार अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो। दिन नहीं, बड़े लंबे चौदह बरस। किसीको खटक न बुड़त बिरह बारीस कुपानिधान मोहि कर गहि लियो॥ पाये, ऐसा मस्त योग्य नाविक और कौन मिल सकता भरत! तुम्हें संसार पूजेगा! परंतु मूर्ति बनाकर था, धन्य भरत! राज्यमदको एक कोनेमें ढरका दिया। नहीं, विरहसागरका चतुर नाविक समझकर! कई भँवर आये, कुशलतासे उनसे बचाकर नैया पार जन रंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू॥ ले गया। खे गया! खूब ही खे गया!! सौंपी कहाँ! दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को। किसे! चौदह बरस बाद— कलिकाल तुलसी से सठिन्ह हठि राम सनमुख करत को।। 'रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।' अगर भरत! तुम न हुए होते तो इन चौदह वर्षोंमें राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत। अयोध्या उजाड़ हो जाती। खाली विरह-सागर ही बहता होता! वाह रे चतुर नाविक धन्य! बिप्र रूप धरि पवन सुत आइ गयउ जनु पोत॥

भाग ९६

संख्या २ ] संत-वचनामृत संत-वचनामृत ( वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे ) 🕸 सत्य, दया, क्षमा, ब्रह्मचर्य, सदाचार आदि गुण बाद घूमते-फिरते नारदजीने उस बछड़ेसे जाकर पूछा नित्य अखण्ड अनन्त रूपसे भगवान्में रहते हैं। भक्त जब तो वह भी और कुछ न कहकर शरीर छोड़कर चला भगवानुको अपने हृदयमें लाता है तो वे सत्य आदि गुण गया। आश्चर्यचिकत नारदजीने आकर भगवानुसे कहा— भक्तमें भी आ जाते हैं। पूर्णरूपसे प्रभु हृदयमें आवेंगे तो 'महाराज! आपकी आज्ञासे मैंने बछड़ेसे पूछा तो वह वे गुण भी पूर्णरूपसे आयेंगे। जैसे-जैसे प्रभुका ध्यान भी मर गया। अब आप ही सत्संगकी महिमा बताइये। दृढ़ होगा वैसे सद्गुण आकर निवास करेंगे। इधर-उधर क्यों भटकाते हैं?' भगवान्ने कहा इस बार 🕏 भूमिके तीर्थ फलदायक तब होते हैं, जब आपको अवश्य ही सत्संगकी महिमाका ज्ञान हो जायगा। अमुक नगरके राजकुमारसे जाकर पूछो। मनके तीर्थोंमें स्नान किया जाय। उनका सेवन किया नारदजीने जाकर राजकुमारसे जैसे-ही प्रश्न किया जाय। सत्य, दया, क्षमा, अहिंसा, अस्तेय आदि मानस तैसे-ही वह शरीर त्यागकर विष्णु-पार्षदरूप हो गया तीर्थ हैं, इनके बिना भौम तीर्थ पूर्ण फल प्रदान नहीं करते हैं, अत: मानस तीर्थींका सेवनकर मनको शुद्ध और नारदजीसे बोला कि मैं चौरासी लाख योनियोंमें करना अति आवश्यक है। इनके साथ भौम तीर्थ विशेष भटककर पक्षी-योनिमें आया था, उस समय आपने मुझे दर्शन दिया। क्षणिक सत्संगसे मेरे पाप नष्ट हो फलदायक हैं। 🕸 भागवतमें सबसे श्रेष्ठ भक्त व्रजकी गोपियोंको गये और मैंने गो-योनि प्राप्त की। वहाँ भी आपने कहा गया है। वे घर छोड़कर कभी तपस्या करने नहीं दर्शन दिया तो आपके संगसे पुन: पुण्योंकी प्राप्ति हुई और यह मनुष्य-शरीर मिला। इस बार भी प्रभुकुपासे गयीं। अपने घरपर गाय दुहते समय, दही मथते समय, झाड़ लगाते समय, चौका लगाते समय, रोते हुए आपका सत्संग मिला, इससे तो अब मैं पार्षदत्व बालकोंको चुप कराते हुए भगवान्के नाम-गुणोंका प्राप्तकर वैकुण्ठको जा रहा हुँ, यह आपके संगका कीर्तन करती रहती थीं। घरका काम भी करना और फल है। भगवानुके नाम-गुणोंका कीर्तन करते रहना-इसीसे श्रीनारदजीने समझा कि मैंने कुछ भी उपदेश नहीं भगवान् उनके ऊपर प्रसन्न हो गये। उन्हें अपना प्रेम दिया, केवल मेरी उपस्थितिमात्रसे इतना लाभ हुआ। प्रदान किया, उनके अधीन हो गये। अतः सत्संगकी महिमा अपार है। 🔹 एक बार श्रीनारदजीने भगवानुके समीप जाकर 🕏 सभी अंगोंकी अपेक्षा चरण वन्दनीय होते हैं। सत्संगकी महिमा पूछी। भगवान्ने कहा कि अमुक चरणोंकी अपेक्षा पादत्राण विशेष वन्दनीय हैं, सभी अंग वनमें एक सरोवर है, उसके तटपर बैठा एक पक्षी ऊपर है। सबसे नीचे चरण हैं। सम्पूर्ण अंगोंके सेवक एवं वाहक हैं। अत: श्रेष्ठ हैं। चरणोंसे पादत्राण श्रेष्ठ भजन कर रहा है, तुम उससे जाकर पूछो। नारदजीने जाकर पूछा तो उसने उसी क्षण शरीर छोड़ दिया। हैं; क्योंकि चरणोंके सेवक हैं। तात्पर्य यह है कि जो इससे नारदजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने आकर सबसे छोटा बनकर सेवा करता है, वह सबकी अपेक्षा समाचार बताया कि उस पक्षीने महिमा न बताकर वन्दनीय है। भक्तके अधीन भगवान् हैं, इसी सिद्धान्तसे शरीर ही छोड़ दिया। भगवान्ने कहा—'इस बार आप पादत्राणके अधीन चरण हैं। चरण इधर-उधर घूमघामकर पृथ्वीलोकमें जाइयेगा तो अमुक ग्राममें अमुक ब्राह्मणकी वहाँ ही आयेंगे, जहाँ पादत्राण है। गायके बछड़ेसे पूछियेगा, वह बतायेगा।' कुछ दिन ['परमार्थके पत्र-पुष्प'से साभार]

िभाग ९६ आध्यात्मिक जीवन ( ब्रह्मलीन स्वामी श्रीदयानन्द गिरिजी महाराज) मनुष्यको स्वयं अपने अन्दरमें समझना चाहिये (सारहीन) थोड़े सुख दिखायी भी देते हैं, वे अन्तमें दु:खोंमें ही समाप्त होते हैं। इस प्रकारका विचार करना कि हम सब भौतिक जीवन (बाहरके जीवन)-में बह रहे हैं और इस जीवनका अन्त केवल दु:खरूप ही ज्ञान उपजाना है। ये सब अन्दरके सत्य हैं और उनकी भक्ति करनी है। सत्यके ज्ञानको ही 'प्रज्ञा' कहा ही है। मनुष्यको चाहिये कि वह प्रयत्न करके अपने जाता है अर्थात् वह ज्ञान जो किसी विषयके बारेमें बिखरे हए मनको बाहरसे एकत्रित करके अपने अन्दर बार-बार विचार करनेसे अन्तिम फल (निचोड़)-के रूपमें मिलता है अर्थात् वह छिपा हुआ ज्ञान जो कि लाये, जिससे कि उसकी प्राण-शक्ति भी देहके अन्दर सांसारिक ज्ञानके मार्गसे नहीं प्राप्त होता, बल्कि ध्यानकी आकर सुचारु रूपसे अंगोंको चलाये या पुष्ट करे,

ताकि नाना प्रकारकी बीमारियाँ उसे परेशान न करें। इसलिये यही कहा गया है कि मनुष्य पच्चीस सालकी आयुसे लेकर चालीस सालकी आयुतक सँभलना शुरू

कर दे। विचारद्वारा पहचानी हुई अपनी बुरी आदतोंको भी वह इसी कालमें छोडनेका प्रयत्न करे। मनके जागनेपर अपना-आपा दिखने लगेगा। जब अन्दर ध्यान लगने लग गया तो अन्तमें संसारके प्राणी एवं पदार्थोंसे बेपरवाही हो जायगी और उनका अभाव महसूस नहीं होगा। अन्दर ध्यान लगनेसे यही समझा जायगा कि मन लगानेका आपको मार्ग (रास्ता) मिल

गया है। मन अन्दर तबतक नहीं लगता, जबतक कि उसको ज्ञान नहीं मिलता है। सो यदि आपने सही मार्ग अपनानेकी हिम्मत करनी शुरू कर दी और शीघ्रातिशीघ्र धर्म-मार्गपर चलने लग गये, तो यह अति उत्तम होगा। वैसे तो मनुष्य आध्यात्मिक जीवनपर

चलनेके लिये जिस समय भी चेत जाय, वही समय ठीक है, अर्थात् किसी भी समय इस मार्गपर चलनेसे उसका हित (कल्याण) ही होगा। मनको बाहरसे इकट्ठा करनेका यही रास्ता है कि उसको बाहरके सुखकी ओर ले जानेवाले तृष्णारूपी

कारणकी जड ही काट दी जाय। अपने मनको बोल-बोलकर समझाओ कि भौतिक संसारमें वास्तविक

सूक्ष्मता (बारीकी)-से बुद्धिमें प्रकट होता है। इन प्रज्ञाओंकी ही उपासना करते-करते जैसे-जैसे आपका मन बाहरके संसारसे मुक्त होता जायगा, वैसे-वैसे ही आपको अन्दर आनन्द मिलता रहेगा। अन्तमें इस आनन्दका फल यही है कि बाहर किसीकी भी 'तू-

ही है। फिर एक चेतन ही है, जो सबकी देहोंमें बैठा हुआ सबका काम चला रहा है। यदि आपने उस चेतनको जान लिया और उसका आनन्द भी अखण्ड रूपसे (पूर्णरूपसे) आपको मिलने लग गया, तो यही आध्यात्मिक जीवनकी पूर्णता है। इस प्रकार यह जीवन चलते-चलते अन्तमें जहाँ पहुँचता है, उसी स्थानको परमधाम (परमपद) कहा जाता है। यह सुख कभी भी समाप्त होनेवाला नहीं है। यह जीवनका परमसुख कहलाता है। आप चुपचाप इस आध्यात्मिक जीवन-पथपर चलते रहो और किसीको खबर करनेकी

मैं' नहीं जाननी पडेगी और यह भी समझमें आयेगा

कि जैसे मेरी 'मैं' तुच्छ थी, वैसे ही सबकी मैं तुच्छ

जीवनमें किसी भी प्रकारके बाहरी दिखावे (प्रदर्शन)-की आवश्यकता नहीं है, केवल अपने जीवनको कुछ नियमोंमें रखकर चलना पड़ता है, जैसा कि शास्त्रोंमें सद्गुरुओंद्वारा चला हुआ जीवन बताया गया है। (असली) सुख कुछ भी नहीं है और जो भी तुच्छ Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

भी आवश्यकता नहीं है कि मैं कैसे रहता हूँ? इस

संख्या २ ] जीवन	जीना और ढोना	३१		
\$	**********************************	<u> </u>		
जीवन जीना और ढोना				
	ाथजी झुनझुनवाला )			
मैंने कुछ लोगोंको देखा है, जो जीवन जीनेके लि		हैं।		
एवं कुछ करनेके लिये जीते हैं, लेकिन कुछ ऐ				
लोगोंको भी देखा, जिनको जीवन जीनेकी तमन्ना ख				
हो गयी और वे हाथ उठाकर प्रभुसे प्रार्थना करते दे				
गये कि प्रभु अब हमसे जीया नहीं जाता, हमें अब उ				
लो और पास बुला लो।	प्रात:-भ्रमणमें इस पच्चासी वर्षके जवानसे			
अब इस सूत्रका विवेचन करनेमें जीवन जीनेव				
एवं जीवन ढोनेवाले चरित्रोंका हम वर्णन करेंगे।	वे भी हाफ पैंट-शर्ट एवं कपड़ेके जूते पहने हुए			
मैं प्रात:-भ्रमण करनेका नित्यका अभ्यासी				
चाहे अपने शहरमें रहूँ या अन्यत्र जाऊँ या परदेश जा		रुक		
प्रात:-भ्रमणके नित्यके अभ्यासको नहीं छोड़ता।	मैं गया, उनकी बातोंको सुननेके लिये। बातें सुननेके	बाद		
बनारससे बम्बई जाता हूँ तो मरीन ड्राइवपर नित्य घूम	ıता उनकी भी उम्र पूछ बैठा तो उन्होंने कहा—'I am eig	ghty		
हूँ। वहाँपर हजारोंकी संख्यामें पुरुष एवं महिलाओं	को two not out' याने मैं बयासी वर्षका हूँ, लेकिन जि	न्दगी		
नित्य घूमते आप भी देख सकते हैं। मैं जब घूम र	हा जीनेसे बाहर नहीं हुआ हूँ। ऐसे जिन्दादिल व्यक्तिय	योंका		
था तो एक सज्जन हाफ पैंट एवं टी-शर्ट तथा कपड़े	का जीवन जीनेके लिये होता है, मरनेके लिये नहीं।	ऐसे		
जूता पहने पाँच लोगोंसे खड़े होकर बातें कर रहे :	थे। व्यक्ति जीवनको कभी भार नहीं समझते। वे	कुछ		
उनके बात करनेके तरीकेसे प्रभावित होकर मैं भी उन	की करनेके लिये जीते हैं, मरनेके लिये नहीं। वे यह	१ भी		
बातोंको सुननेके लिये खड़ा हो गया। वे चाहे व्यापार	की जानते हैं कि मरना तो निश्चित है, लेकिन जब मौ	तको		
बातें हों, चाहे अध्यात्मकी हों या परिवारकी, खूब वि	ल आना है, आये, नहीं छोड़ेगी तो चला जाऊँगा उ	सके		
खोलकर और हँसकर बातें कर रहे थे। उनके अ <sup>न</sup>	च्छे साथ। न तो मौतकी प्रतीक्षा करूँगा और न मं	गैतसे		
अन्दाजको देखकर मुझसे रहा नहीं गया और मैं प्	- 1	क्या		
बैठा कि 'भाई साहब! मैं आपकी उम्र पूछ सकता हूँ	?' घबड़ाना?			
तो उन्होंने बताया 'I am an young man of eighty fi	ve अब मैं ऐसे व्यक्तिका चरित्र-चित्रण करूँगा,	, जो		
years only' याने मैं सिर्फ पच्चासी वर्षका जवान		र्गषके		
उनका जवाब सुनकर और जवाब देनेका तरीका देखव	भर जवान लड़केको देखा। उसके चेहरेपर न उल्लास	है न		
मुझे भी आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नताकी अनुभूति हुई ी		वह		
देखें इस आदमीका जीनेका अन्दाज कितना शानदार	9			
पच्चासी वर्षका होकर भी अभी अपनेको जवान मान	ाता नहीं करना है ? गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते ी	हैं—		
है। ऐसे आदमी जीवन जीनेका आनन्द लेते हैं, उ	न्हें <b>संशयात्मा विनश्यति</b> यानी जो हमेशा संशयमें रहत	ा है,		
मरनेकी बात सोचनेकी फुर्सत कहाँ। ऐसे व्यक्ति	_			
प्रसन्नता देखकर आत्महत्याके लिये जाता व्यक्ति				
अपनी आत्महत्याका इरादा बदल देगा और जी	```	_		
चाहेगा। आत्महत्या वे ही लोग करते हैं, जो जीवन	ासे अनिर्णय है। इस सूत्रको स्पष्ट करनेके लिये	मुझे		

भाग ९६ पंजाबके पूर्व मुख्यमन्त्री श्रीप्रतापसिंह कैरोंकी याद वैसी ही सृष्टि हमें दिखायी पड़ेगी। हमें बताया जाता आती है। कैरों साहब देशके प्रथम इंजीनियर मुख्यमन्त्री है कि हमारी सोच भी सकारात्मक होनी चाहिये, उसी प्रकार थे, जैसे डॉ० विधानचन्द्र राय देशके प्रथम नकारात्मक नहीं। जब सकारात्मक सोच होगी तो हमें चिकित्सक मुख्यमन्त्री थे। कैरों साहब दिल्लीसे चण्डीगढ़ उसके गुण दिखायी देंगे और जब नकारात्मक सोच कारसे जा रहे थे। उनके बगलमें पंजाबके चीफ सेक्रेटरी होगी तो हमें दोष दिखायी देंगे। कोई व्यक्ति ऐसा नहीं एवं सामनेवाली सीटपर उनके प्राइवेट सेक्रेटरी श्रीतलवार मिलेगा जिसमें केवल गुण-ही-गुण हों या केवल दोष-बैठे थे। गाड़ी जब चण्डीगढ़की ओर जा रही थी तो ही-दोष हों। एक दन्तकथा है कि दुर्योधनसे कहा गया रास्तेमें एक खरगोश सड़क पार कर रहा था और इनकी कि एक अच्छा आदमी खोजकर लाओ तथा युधिष्ठिरसे गाड़ीसे दबकर मर गया। कैरों साहबने गाड़ी रुकवा दी कहा गया कि कोई बुरा आदमी खोजकर लाओ। दोनों और अपने प्राइवेट सेक्रेटरी तलवार साहबसे पूछा कि खोजने निकलते हैं, लेकिन न तो दुर्योधनको कोई अच्छा यह खरगोश दबकर क्यों मरा? तो उन्होंने जवाब दिया आदमी मिला और न युधिष्ठिरको कोई बुरा आदमी मिला। कारण दुर्योधनको सबमें बुराई दिखती है और कि साहब इसकी मौत आ गयी तो मर गया, क्यों मर गया मैं कैसे बताऊँ ? उनके बगलमें बैठे चीफ सेक्रेटरी युधिष्ठिरको सबमें अच्छाई दिखती है। बस, यही है साहबने पहले ही कह दिया कि साहब! इनके बाद आप नकारात्मक सोच एवं सकारात्मक सोचका चित्रण। यही मुझसे पूछेंगे कि खरगोश क्यों मरा, मैं भी नहीं बता है—जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। सकारात्मक सोचवाला पाऊँगा तो कैरोंने कहा कि जब खरगोश सड़क पार कर जीना जानता है, ढोना नहीं जानता है। फिर हम दूसरेको बुरा बतानेवाले होते कौन हैं? इसीलिये जीवन जीनेका रहा था तो उसने जब गाड़ी आते हुए देखा तो पहले दुबक गया और उसके बाद वापस पीछे भागा। उसका आनन्द लेना है तो हमेशा सकारात्मक सोच रखें। दुबकना उसका Indecisiveness था, अगर वह बिना जीवनमें सुख और दु:ख सभीको आते हैं-चाहे दुबके सड़क पार करता या वापस पीछे भागता तो बच जीवन जीनेवाला व्यक्ति हो या जीवन ढोनेवाला। लेकिन जिसको जीना आता है, वह सुख-दु:खको अपने जाता यानी उसकी मौतका कारण उसका Indecisiveness था न कि wrong decision । कैरों साहबने इस कर्मोंका फल मानते हुए हँसी-खुशीसे सुख-दु:खको एक छोटेसे उदाहरणसे अपने अधिकारियोंको यह झेल लेता है और यह मानकर चलता है कि दु:ख आया सन्देश दिया कि कभी भी आप Indecisive न रहें, है तो अब सुख भी आयेगा, लेकिन जिसे जीवन ढोना निर्णयमें विलम्ब न करें। निर्णय चाहे जल्दी लें या है उसको दु:ख और दुखी कर देगा और उसके जीवनकी उदासी निराशाको और अधिक बढ़ा देगा। विलम्बसे लें, गलती तो कभी-कभी होगी ही। अत: गलती होने दीजिये, लेकिन निर्णय लेनेमें कभी विलम्ब हर व्यक्तिको आजीवन सुखी और व्यस्त रहनेकी न करें। गलतीसे अवश्य सीख लेनेकी चेष्टा करें कि कला सीखनी चाहिये। ऐसा करके वृद्धावस्थाको भी गलती भविष्यमें न होने पाये। जिनके जीवनमें न आनन्द सुखद बनाया जा सकता है। अगर आपका स्वास्थ्य है न उमंग है और न उल्लास है और निश्चयात्मक बृद्धि नियन्त्रणमें है एवं विचार सकारात्मक हैं तो किसकी भी नहीं है, उनका जीवन जीना कभी सार्थक नहीं होगा हिम्मत है, जो आपको बूढ़ा बना देगा। वृद्धावस्थामें और ऐसे ही व्यक्ति जीवनको ढोते हैं और मरनेकी कमाई नहीं होती है तो अपने खर्चेके लिये जवानीकी प्रतीक्षा करते हैं। कमाईको अपनी हैसियतके अनुसार बचाकर सुरक्षित एक सूत्रका और प्रतिपादन करना चाहूँगा, वह है रखना चाहिये। अपने दाम्पत्य-जीवनको भी अनुकूल 'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि'। जैसी हमारी दृष्टि होगी, बनाकर रखें। दोनों एक-दूसरेका ख्याल रखें। जीवनमें

<b>मंख्या २</b> ] मनोमय कोशका स्वरूप एवं स	ाधना-पद्धतिकी सार्वभौमिकता ३३	
***********************************	************************************	
मधुरता रखें, कटुताको न आने दें। यह मानकर चलें	हम मरते दमतक काम करते रहेंगे। इसीको कहते	
कि जब रहना साथमें है तो हम प्रेमसे रहें। कभी	हैं कि चलकर चितापर जाना यानी न कष्ट पाना	
जीवनमें प्रतिकूलता आये तो अन्य अनुकूल दाम्पत्य	और न कष्ट देना। यमराजको जब मेरी जरूरत	
जीवनवालेसे सलाह ले सकते हैं। मेरा अनुभव है कि	होगी, वह अपने बकाया कामको पूरा करनेके लिये	
प्रतिकूलताका कारण केवल एक-दूसरेको समझनेकी	हमें बुला लेगा। जब मरना निश्चित है तो मरनेसे	
कमी है। जहाँ समझ ठीक हुई, वहीं प्रतिकूलता भी	क्या डरना? सचमें जो मरनेसे नहीं डरेगा और न	
अनुकूलतामें बदल जायगी और दाम्पत्य-जीवनमें	मरनेकी प्रतीक्षा करेगा, वही व्यक्ति जीवन जीता है।	
मधुरता आ जायगी। अनुकूल दाम्पत्य-जीवन होगा तो	जो मरना चाहता है और भगवान्से अपने पास	
जीवन जीनेमें मजा आयेगा, किंतु इसके विपरीत जीना	बुलानेकी प्रतीक्षा करता है। ऐसे ही व्यक्ति जीवनको	
भी भारस्वरूप हो जायगा।	ढोते हैं। जीवन मिला है जीनेके लिये, कुछ करनेके	
हर वृद्ध व्यक्ति यह मानकर चले कि मरना तो	लिये, केवल मरनेके लिये नहीं। जबतक जियें	
निश्चित है, लेकिन हम मरनेकी प्रतीक्षा नहीं करेंगे;	हँसकर जियें। जीवनका पूरा आनन्द लें।	
<b></b>	<b>&gt;</b>	
मनोमय कोशका स्वरूप एवं स	ाधना-पद्धतिको सार्वभौमिकता	
(डॉ० श्रीविनोदजी शर्मा)		
अन्नको हमारे ग्रन्थोंमें जीवनका आधार बताया	वे मनको अतिसूक्ष्म बनाते हैं। तब मनुष्य सूक्ष्म	
गया है। अन्न इस शरीरमें स्थूल और सूक्ष्म दो	मनवाला होकर अध्यात्मके क्षेत्रमें रमण करता हुआ	
प्रकारका जाना जाता है। स्थूल अन्न शरीरको बलवान्	आत्मतत्त्वकी प्राप्तिकी ओर उन्मुख हो जाता है,	
बनाता है और सूक्ष्म अन्न हमारे मन-मस्तिष्ककी	उसकी प्राप्ति अपना परमलक्ष्य मान लेता है।	
खुराक बनकर हमारी आत्माको—हमारे प्राणोंको ऊँचा	अन्नको प्राण इसलिये कहा गया है; क्योंकि इस	
बनाता है। अन्नके रक्त, मज्जा, वीर्यादि परिणामको	अन्नसे प्राण बलवान् बनता है। प्राण ऊँचा बनता है।	
प्राप्त होनेवाले कार्योंके लिये छ: कोशोंमेंसे एक कोश	प्राणोंके बलवान् या ऊँचे होनेसे या बननेसे मन पवित्र	
अन्नमय है। अन्नमयकोशका सम्बन्ध मनसे है। हमारे	और बलवान् बनता है। उसमें स्वाभाविक चंचलता नहीं	
द्वारा खाये जानेवाले अन्नका अतिसूक्ष्म रूपमें परिणत	रहती। मन स्थिरताको जैसे-जैसे प्राप्त करता है, वैसे-	
अंश ही मन कहलाता है। अन्नसे मन बना है। इसलिये	वैसे सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म पदार्थींका चिन्तन करता है	
अन्न ही मनोमयकोशको बलवान् बनाता है। मन,	4 0 0 0 1 1 1	
गा हा गामिनमारामा नरानाम् नाता हा गाः,	और उनकी उत्पत्ति आदिके रहस्योंको जानने लग जाता	

बुद्धि, चित्त, अहंकार एक सूत्रमें पिरोये मोतियोंकी तरह

हैं। चित्तमें जो मनोमय कोश है, उसमें न जाने कितने जन्मोंके संस्कार भरे पड़े हैं। मनसे जुड़ी मनकी धाराएँ-- मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार हैं-- ये धाराएँ मनकी तरंगें हैं। ये तरंगें ही मनोंमें परिवर्तित होती हैं

है। प्राण और मनमें आत्मा विश्राम करने लगता है, चेतनाके गुणोंका आना स्वाभाविक रूपसे शुरू हो जाता है। तब परमात्माका ज्ञान परमात्माके गुण उसमें प्रवेश होने शुरू हो जाते हैं। इसके बाद वह विज्ञानके क्षेत्रसे ऊपर

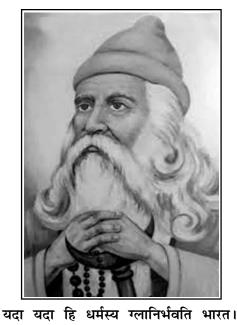
उठकर परमात्माके असीम आनन्दमें प्रवेश पा लेता है। और इस प्रकार कालकी स्थितिके अनुसार एक-दो हमारे द्वारा खाया जानेवाला अन्न शुद्ध, सात्त्विक

नहीं, अनेक मनवाला होकर मनुष्य न जाने कितने एवं पवित्र होना चाहिये। यदि अन्न पवित्र नहीं होगा निर्माण करता है। निर्माणोंके ये संस्कार जो पूर्वके हैं, तो कोई भी व्यक्ति ऋषि-मेधाको प्राप्त नहीं कर सकता।

भाग ९६ \* वेदका वास्तविक आचार्य तो ऋषि-मेधासे युक्त ही होता पुष्पका अस्तित्व है, तभी तो वह कार्यरूपमें पहले है। 'ऋत्' यानी परमसत्यका ज्ञान करानेवाली मेधा कली, फिर उस कलीके खिलनेपर फूल बना। कोई अर्थात् 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' से सम्पन्न। अन्न खाद्य है— नयी वस्तु इस संसारमें नहीं बनती, अपितु जो पहले भोजन है प्राणोंका। प्राण अन्नको निगलता है, ग्रहण थी, वही दूसरे रूपमें पैदा होती है। वस्तुका उसके रूपका अन्तरण है। स्थूल शरीरके अतिरिक्त सूक्ष्म करता है, और ग्रहणकर बलवान् होता है। **'अन्ताद्भवन्ति भृतानि'** अन्तका कोश अन्त और कारण दो अन्य शरीर भी हैं। हमारी प्रत्येक प्राण यानी अन्नसे उत्पन्न प्राणोंका आयतन है, घर है। क्रियामें स्थूलसे अधिक सूक्ष्मका योगदान होता है। अन्नमय प्राणोंसे बना है। प्राण और मनकी क्रियाके उस ब्रह्मकी साक्षात् उपलब्धि मनसे ही होती है। सम्बन्धका ज्ञान होनेसे मनुष्य ब्रह्मवेत्ता बनता है। रक्त, इसलिये उसे मनोमय कहा जाता है। मनका अभिमानी मज्जा आदि जितने पदार्थ हैं, वे मानव-शरीरके अंग या मनके द्वारा मनन किया जाता है, जाना जाता है, इसलिये भी मनोमय है। हैं, ये अंग-रूप पदार्थ अन्नसे विकासको प्राप्त होते हैं, तथापि पदार्थींका ज्ञान अन्नके सूक्ष्म अंशरूपमें अन्न प्राणियोंसे पहले इस सृष्टिमें पैदा हुआ। अन्नसे जड़-चेतन समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं। परिणत मनके द्वारा ही होता है। अन्नका मनसे गहरा सम्बन्ध है। या कहना चाहिये कि 'अन्न ही मन है' उत्पत्तिके बाद अन्नसे जीवित रहते हैं। अन्नसे ही बल अन्न ही ब्रह्म है और इस अन्नरूप ब्रह्मको अन्नसे प्राप्त करते हैं, बढते हैं और अन्तमें मृत्युके बाद अन्नमें जाना जा सकता है। ही विलीन हो जाते हैं। जितने भी शब्द हैं, वर्ण हैं, वाक्य हैं, वे शून्यमें अमृत देवताओं और असुरोंके सम्मिलित प्रयाससे विचरण कर रहे हैं। मन्त्रोंके समूह भी शून्यमें हैं। उन्हें समुद्रका मन्थन करनेसे निकला था। सोम शब्दका प्रयोग अनुभव किया जा सकता है, सुना जा सकता है और चन्द्रमाके लिये भी किया गया है। सोम अन्नका भी नाम साधनाकी परिपक्वावस्थामें देखा भी जा सकता है, पर है। यह हमारा शरीर सोमरूप अन्नकी आहुतिके होते यह सब मनके अति सूक्ष्म होनेपर ही सम्भव है। चेतन रहनेसे जीवित है। सूर्यमें सोम निरन्तर आहुत हो रहा स्वरूप जो परमात्मा है, उसके प्रभावसे यानी उसकी है, जिसके कारण प्रकृतिकी सारी व्यवस्था चल रही है। वेदमें सोम एक तत्त्व है, जिसे साधनाके विभिन्न स्तरोंपर शक्तिसे जगत्की हर वस्तु क्रिया कर रही है, गतिमान है। हिलती-डुलती या घूमती हुई हर वस्तुका-हर जाना जाता है। परमाणुका उस परमात्मासे सम्बन्ध है, परमात्माकी अन्न प्राणियोंद्वारा खाया जाता है, और यह अन्न शक्तिसे जुडे होनेसे। परमात्मा एक-एक कणमें, मनोंमें, स्वयं भी प्राणियोंको खाता है, इसलिये यह अन्न हमारे विचारोंमें रमण कर रहा है। कहलाता है। अन्न देहका वाचक है। चलने-फिरने जीवका और परमात्माका यह सम्बन्ध अनादि बोलनेकी शक्ति अन्नके भक्षणसे आती है, इसलिये अन्न है। हम फूलको देखते हैं तो उसकी सुन्दरता उसकी प्राण है। यह प्राण, अपान आदि पाँचों भेदोंवाला है और बनावटपर मुग्ध हो जाते हैं, उसे स्पर्श करते हैं, चक्षु, श्रोत, मन और वाकृद्वारा विषयोंकी उपलब्धि सुँघते हैं और फेंक देते हैं। अपनेसे अलग कर देते (ज्ञान)-का साधन होनेसे भी प्राण है। इन्द्र यद्यपि द्वादश प्राणोंमें गिना जानेवाला एक हैं, पर क्या हममें इतनी सामर्थ्य है कि प्रकृतिके सारे फूलोंको अपनेसे अलग कर दें। कर भी नहीं सकते। प्राण है, पर यह इन्द्र प्राणका दूसरे प्राणोंसे अलग स्रिंगर्भात्रेम् स्रिप्टि स्प्रिंग्याम् स्थापति स्प्रिंग्याम् स्थापति संख्या २ ] मनोमय कोशका स्वरूप एवं साधना-पद्धतिकी सार्वभौमिकता और उत्तम प्राणोंको समिद्ध करता है। समिद्ध यानी ऐसा मानें तो तैत्तरीय उपनिषद् और बृहदारण्यक उपनिषद्में कहे गये वाक्य सहज रूपसे अर्थ प्रकट प्रदीप्त करनेके गुणके कारण ऐन्ध है। ऐन्ध शब्दका करने लगेंगे। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौ, दिशाएँ और अपभ्रंशरूप ही इन्द्र है। सूर्य जबतक सूर्य है तबतक सूर्य है, पर ज्यों ही इन्द्र नामका प्राण सूर्यके अन्दर उपदिशाएँ भूत तत्त्व हैं, यह तैत्तरीय उपनिषद्का प्रवेश करता है, तब सूर्य न होकर सविता कहलाने कथन है। और इसी उपनिषद्के अन्य वाक्योंमें इनके लगता है। सविता शब्दका अर्थ है—सबको सारे देवता अग्नि, वायु, आदित्य, चन्द्रमा और नक्षत्र हैं। जगत्को उत्पन्न करनेवाला। यह इन्द्र सूर्यकी प्रदीप्ति इनके प्राणोंको वाक् प्राण: चक्षु: मन: श्रोत्रं कहा गया तो है ही। प्रदीप्ति क्रियाका ज्ञान होनेसे यही इन्द्र है। इसलिये जो पृथ्वी आदि तत्त्व हैं, वही वाक् आदि प्रदीप्तिका साधन भी है। हैं। इन्हींको भूत शब्दसे अभिहित किया गया है। फिर अग्निमें सोम (अन्न)-के आहत होनेसे या सोमरूप अन्न कौन-सा तत्त्व है ? इसका उत्तर छान्दोग्योपनिषद्के इन्द्रके रहनेसे ही प्रकाश है। इन्द्रके अपने स्वरूपसे वाक्य—'मन तत्त्व अन्नमय है' में बताया है। इसको क्रियाका ज्ञान और क्रियारूपमें सूर्यके समस्त प्राणोंको और अधिक स्पष्टरूपमें बृहदारण्यक उपनिषद् बतलाता है—िक अन्न नाम है—अदिति नामक वाक्का। समिद्ध करता है। समिद्ध शब्दका अर्थ है—प्राणोंको भली प्रकार एकत्रित करनेवाला। इन्द्रने जिस तत्त्वको विकास इससे होते गये, उन्हें यह अपने अन्दर समाहित खोजा है, उसे यक्ष या महद्यक्षके नामसे जाना जाता करती गयी। अदन् खानेके अर्थमें ग्रहण होनेसे अदनसे है। केन उपनिषद्में यक्ष शब्दका अर्थ आदिकारण ब्रह्म अत्ति बना। अन्नको खानेकी क्रियासे युक्त अत्ति या दिया गया है। वह सोम यानी उमासे युक्त ज्योति है, अदन अर्थको ग्रहणकर अदिति शब्द बना। या जिसे ब्रह्म कहा जाता है। वर्णोंमें प्रथम अकार अक्षर अत्रि—खानेकी क्रियावाले प्राणोंका समूहका नाम ब्रह्मका दर्शन है। इस अक्षर ब्रह्मका सर्वप्रथम इन्द्रने अदिति है। साक्षात्कार किया था। ज्योतिरूप ब्रह्मका दर्शन ही अत्रिने चतुराज यज्ञ किया, इसलिये खाने यानी इन्द्रके द्वारा किया जानेवाला सोमपान है। सोमको ग्रहण करनेके सम्बन्धमें सबसे पहले ज्ञान हुआ। अतः ज्ञानमयी बृहती ज्योति भी कहा गया है। कहनेका ग्रहण लगनेपर अत्रि ही वापस लाता है, ऐसी मान्यता आशय यह है कि सोमको बृहती विधानों क्रिया, है। अत्रिके सोम और अर्यमा दो पुत्र हुए। अत्रिको पैता व्यापारमें आवृत्त करके रखा था, जिसके कारण वह महर्षि कहा जाता है। अप्रकट रहता है। पर जो 'ओम्' अर्थात् ज्योतिको वस्तृत: सर्वप्रथम उत्पन्न होनेके कारण अन्न जान लेता है यानी इस ज्योतिका साक्षात्कार कर लेता प्राणियोंसे ज्येष्ठ तो है ही, श्रेष्ठ भी है; क्योंकि जैसे है। वह स+ओम् (सोम) सोममय या 'सोमपा'— अनेक तुषावाले धानोंसे जैसे तुषरहित करके जिस तरह सोमको पीनेवाला हो जाता है। 'स अमृतत्वाय चावल निकाल लिये जाते हैं, उसी प्रकार अन्नमयसे कल्पते'—वह अमृतरूप होकर अमृतके आनन्दमें लीन लेकर आनन्दमयकोशपर्यन्त सम्पूर्ण शरीरोंकी अपेक्षा हो जाता है। आन्तरतम ब्रह्मको तत्त्वज्ञानके द्वारा अपने प्रत्यगात्म रूपसे अपरोक्ष अनुभव करानेकी इच्छा रखनेवाले जितने गीताके वाक्य 'अन्नाद् भवन्ति भूतानि'—अन्नसे प्राणी उत्पन्न होते हैं, यहाँ इस वाक्यके भूतानि शब्दको भी शास्त्र हैं, वे सभी अविद्या परिकल्पित पंचकोशोंका प्राणियोंका अथवा पंचमहाभूतोंका वाचक न मानकर बाध करके उस परमात्माका ही ज्ञान करानेकी योग्यता यदि 'पंचात्मनः' 'पंचकोशाः' अथवा 'पंचप्राणाः' दिखाते हैं।

संत-चरित— पर्यावरणप्रेमी सन्त श्रीजाम्भोजी महाराज

( श्रीबद्रीनारायणजी विश्नोई, एम०ए०, जे०आर०एफ०)



श्रीमद्भगवद्गीताके चतुर्थ अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्ण

अर्जुनसे कहते हैं कि हे भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होगी, तब-तब मैं ही अपने रूपको

अभ्यत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

रचता हूँ अर्थात् प्रकट होता हूँ। आजसे लगभग ६०० साल पूर्व जब राजस्थान

प्रान्तमें राजनीतिक और धार्मिक अस्थिरताका वातावरण

था, जनता मुगलों और अन्य विदेशी आक्रान्ताओंके शोषणसे त्रस्त और दुखी थी; ऐसे समयमें तत्कालीन

समाजको सही दिशा देने और उनके प्रबोधनके लिये दिव्य शक्तिके रूपमें सन्त जाम्भोजी (सन् १४५१-

१५३६) मानव-कल्याणके लिये अवतरित हुए। सन्त जाम्भोजीका जन्म सन् १४५१ में राजस्थानके नागौर जिला मुख्यालयसे लगभग ५५ कि॰मी॰ दूर उत्तर

दिशामें स्थित राजस्व ग्राम पीपासरमें हुआ था। उनकी माताका नाम हांसा (हंसा) देवी और पिताका नाम लोहट था। भगवान् विष्णुके अनन्य भक्त होनेसे सन्त जाम्भोजीने अपनी सबद-वाणियोंमें भी 'विष्णु-सहस्रनाम'

तथा भगवान् विष्णुके 'जप'के लिये मानवजातिको

प्रबोधित किया। अपनी सबद-वाणियोंमें भी सन्त जाम्भोजीने '*सहस्त्रनाम विस्नु रा जपो'* और '*विस्नू*-

विस्नू भण रे प्राणी' कहकर भगवान् विष्णुका भजन करनेके लिये जीवोंका आह्वान किया। सन्त जाम्भोजीने मानव-जीवनमें आचरणकी पवित्रतापर विशेष बल दिया और बाह्य आडम्बरोंका घोर विरोध किया। उनकी सबद-वाणियाँ हमें विचारोंकी शुद्धता और

हृदयकी पवित्रताके लिये प्रेरित करती हैं और हमारे जीवनको सही दिशा देती हैं, जैसे कि— 'अड़सठ तीरथ हिरदै भीतर, बाहर लोकाचारा'

सन्त जाम्भोजी हमें सीख देते हैं कि मानव-हृदयके भीतर ही सभी तीर्थों (ईश्वर)-का निवास है, बाहर तो सांसारिक आचार-व्यवहार है, जिसमें दिखावा और आडम्बर अधिक तथा सच्चाई कम है। अस्तु, हे प्राणी!

होना चाहिये। उन्होंने 'तिल-तिल आयु घटंती जावै, मरण ज नैड़ौ आवै'द्वारा जीवनकी मरणशीलताकी ओर इंगित किया है। इसलिये सन्त जाम्भोजीने मनुष्यको

करनेको लेकर उपदेशित किया है। सन्त जाम्भोजीकी 'सबद-वाणी'में 'बारह करोड़ समाहन आयो' का उल्लेख मिलता है, जिसके अनुसार उन्होंने कलिकालमें बारह करोड़ जीवोंके कल्याणके लिये अवतार लिया था।

उत्तम न होयबा। कारण क्रिया सारूं द्वारा मानव जातिको यह बतलानेका प्रयास किया है कि उत्तम कुलमें जन्म लेनेमात्रसे कोई व्यक्ति उत्तम नहीं हो सकता है।

सन्त जाम्भोजीकी 'सबद-वाणी', '*उत्तम कुलि का* 

तुझे 'तत्त्व' प्राप्तिके लिये बहिर्मुखीकी बजाय अन्तर्मुखी

अपना सम्पूर्ण जीवन लोक-कल्याणके लिये समर्पित

व्यक्ति अपनी उत्तम क्रिया (आध्यात्मिक कर्म)-के कारण ही उत्तम बनता है। सन्त जाम्भोजीकी 'सबद-

वाणियों' में 'सद्गुरु'की महत्तापर विशेष जोर दिया गया है। उनकी 'सबद-वाणियों'में उल्लेख आता है कि

'सतगुरु मिलियो सत पंथ बतायो, भ्रांति चुकाई'

संख्या २ ] पर्यावरणप्रेमी सन्त १	श्रीजाम्भोजी महाराज ३७			
\$	***********************************			
अर्थात् सद्गुरुकी प्राप्ति, दर्शन या उनकी कृपासे ही	१०–पानी और दूधको अच्छी तरह छानकर तथा			
जीवनको सही दिशा मिलती है तथा सभी सांसारिक	ईंधनको बीनकर उपयोगमें लेना।			
भ्रान्तियोंका निवारण होता है। इसी तरह ' <i>गुरु बिन मुक्त</i>	११-वाणीपर संयम रखना (सोच-विचारकर			
<b>न जाई'</b> 'सबद-वाणी'से सन्त जाम्भोजीने यह सन्देश	बोलना)।			
दिया है कि मानव-जीवनकी मुक्ति सद्गुरुकी कृपाके	१२-सद्गुरुकी सीखको आत्मसात् करते हुए,			
बिना सम्भव नहीं है। सन्त जाम्भोजीने तत्कालीन	हृदयमें क्षमा एवं दयाके भाव रखना।			
समाजमें फैली विभिन्न प्रकारकी बुराइयों, कुरीतियों	१३–चोरी नहीं करना।			
और अज्ञानताको जड़से मिटानेके लिये सभी जातियोंको	१४-किसीकी निन्दा नहीं करना।			
ज्ञानोपदेशितकर, उन्हें एक अभिनव दिशा दी। उन्होंने	१५-झूठ नहीं बोलना।			
तत्कालीन समाजके धार्मिक और राजनीतिक माहौलमें	१६-किसी तरहके वाद-विवादमें नहीं पड़ना।			
व्याप्त अराजकताके खिलाफ जन–मानसको अपनी	१७-अमावस्याका व्रत रखना।			
अमर वाणियोंसे सचेत किया। सन्त जाम्भोजीने समाजमें	१८-भगवान् विष्णुके भजन, स्तुति आदि करते			
व्याप्त नशाखोरी, मांस-मदिरा आदिको सर्वदा त्याज्य	रहना।			
कहकर, जनताको उनसे हमेशा दूर रहनेके लिये प्रेरित	१९–जीव–जन्तुओंके प्रति दया और उनका पालन–			
किया। सन्त जाम्भोजीने मानव-जीवन और उनके	पोषण करना।			
आचरणसे जुड़े २९ नियम बतलाकर सन् १४८५ (संवत्	२०-हरे वृक्षोंको नहीं काटना।			
१५४२)-में 'विष्णोई (विश्नोई) सम्प्रदाय' की स्थापना	२१-सन्त जाम्भोजीका कहना है कि बुढ़ापेमें			
की। सन्त जाम्भोजीकी सबद-वाणियोंसे प्रेरित होकर	जर्जर (कृशकाय) होकर मरनेकी बजाय उससे पहले			
'विष्णोई' (विश्नोई) सम्प्रदायने इन २९ नियमोंको	ही जीव-जन्तुओं एवं हरे वृक्षोंके रक्षार्थ बलिदान हो			
अपनाया। ये २९ नियम इस प्रकार हैं—	जाना श्रेयस्कर है। ऐसे व्यक्तिको मरणोपरान्त निश्चित			
१–तीस दिनोंतक सूतक (जन्म–कालावधिके	रूपसे मोक्षकी प्राप्ति होती है (अजर जरै जीवत मरै			
सूतक)–का पालन करना।	वै वास स्वर्ग ही पावै)।			
२–रजस्वला स्त्री (मासिक धर्मके दौरान)–का	२२-स्वयंके हाथोंसे रसोई बनाना तथा उसे अन्य			
पाँच दिनोंके लिये गृहस्थ कार्योंसे पृथक् रहना।	लोगोंके स्पर्शसे दूर रखना।			
३-प्रतिदिन सबेरे (ब्रह्ममुहूर्तमें) स्नान करना।	२३–अपनी कीर्ति और यशको सदा अमर बनाये			
४-शील (आचरण एवं व्यवहारकी पवित्रता)-	रखना।			
का पालन करना।	२४-बैलका बन्ध्याकरण नहीं करवाना।			
५-सन्तोष रखना।	२५-अफीमका सेवन नहीं करना।			
६-बाह्य एवं आन्तरिक पवित्रता रखना।	२६-तम्बाकूसे दूर रहना।			
७-द्वि-काल संध्या-उपासना करना।	२७-भाँगका सेवन नहीं करना।			
८–सांझ (संध्या)–को आरती और श्रीहरिकी	२८-शराब और मांसका सेवन नहीं करना।			
स्तुति करना (गुणगान)।	२९-नीले वस्त्र नहीं पहनना।			
९-सच्चे मनसे (प्रेमपूर्वक) हवनादि पवित्र कर्मोंसे	उनके बतलाये नियम जीव-जन्तुओंके प्रति दया,			
जीवनका कल्याण करना।	उनके पालन-पोषण और पर्यावरण-संरक्षण (हरे-			

वृक्षोंको क्षति नहीं पहुँचाना)-के प्रति विश्नोई सम्प्रदायकी राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थानके शोधने भी इस प्रतिबद्धताको प्रकट करते हैं। जैसे कि नियमोंमें कहा बातको स्वीकारा है। वर्तमानमें विश्वके लगभग २०० गया है कि— देश स्टॉकहोम (१९७२)-से लेकर क्वोटो (१९९७), जोहान्सबर्ग (२००२), रियो प्लस २० (२०१२) आदि 'जीव-दया पालणी, रूंख लीलौ नहं ( नहीं ) घावै।' सम्मेलनोंमें पर्यावरण संरक्षणसे जुड़े अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों सन्त जाम्भोजीके समकालीन अन्य सन्तों जैसे गुरुनानक (सन् १४६९-१५३९) और मीराबाई (सन् (क्वोटो-प्रोटोकॉल एवं अन्य)-के उद्देश्योंको लागू १४९८-१५४६)-की पवित्र और अमर वाणियाँ भी करवाने, वायुमण्डलमें ग्रीनहाउस गैसोंके उत्सर्जनको मानव-समाजको सही दिशा देती हैं और उनका भी कटौतीके निर्धारित वैश्विक लक्ष्योंतक सीमित करने और अपना महत्त्व है, लेकिन सन्त जाम्भोजीकी अमर वाणियाँ **'पारिस्थितिको तन्त्रको बहाली'** सहित विभिन्न मानव-जीवनके चरित्र, आचरण-शुद्धि और समाज-पर्यावरणीय विषयोंको लेकर चिन्तित हैं। सुधारके साथ-साथ जीव-जन्तुओंके प्रति दया और आज विश्व 'सतत विकास' के लक्ष्योंकी

पर्यावरण-संरक्षणकी संकल्पनापर विशेष बल देती हैं। सन् १५३६में अपनी साधनामें लीन रहते हुए, भगवान् विष्णुके भजन करते हुए, सन्त जाम्भोजी अपने इष्टके भावलोकमें समा गये। बीकानेर जिलेके नोखा तहसील मुख्यालयसे लगभग १८ कि॰मी॰ दूर पूर्व दिशामें नोखा-सुजानगढ़ राजमार्ग संख्या २० पर स्थित राजस्व ग्राम मुकाममें सन्त जाम्भोजीकी समाधि स्थित है। ध्यातव्य है कि आजसे लगभग ५७० वर्ष पूर्व सन्त जाम्भोजीने जीव-जन्तु और पर्यावरण-संरक्षणके लिये मानव-जातिका बड़ी मजबूतीसे आह्वान किया था। उन्होंने प्रकृति और पर्यावरणके प्रति मानवके तालमेल

बिगड़नेसे मानव-जातिके अस्तित्वपर मॅंडराते भावी खतरोंके प्रति गहरी चिन्ता व्यक्त की थी और मानव जातिको चेताया भी था। अस्तु सन्त जाम्भोजीने अपनी वाणियोंमें 'हवन' के धार्मिक और पर्यावरणीय महत्त्वको भी समझाया, जिसे आज विज्ञान भी मान रहा है कि 'हवन' में प्रयुक्त समिधाएँ—चन्दन, आम, शमी, पलाश, अशोक और मदार तथा घृत, गुग्गल आदि विभिन्न हवन-सामग्रियोंसे प्रसूत धूम (धुएँ)-से श्वास आदिसे जुड़ी अनेकों बीमारियाँ ठीक होती हैं तथा वायुमण्डलमें मौजूद मानव-जाति और पेड़-पौधोंके लिये हानिप्रद विभिन्न विषैले कीटाणु भी नष्ट होते हैं। आज भारतसहित विश्वके

निरन्तरता रखना हमारे लिये बहुत ही कठिन कार्य है। **'कोविड-१९'** महामारीके बाद उत्पन्न वैश्विक हालात हमें बतलाते हैं कि पर्यावरण संरक्षणके बिना 'सतत विकास' की संकल्पना सिर्फ एक सुनहरा स्वप्न है। कोरोना महामारीके पश्चात् विकासकी संकल्पनाको अब नये सिरेसे परिभाषित किया जाने लगा है, जिसने 'अभिनव विकासवाद : कोरोना महामारीके पश्चात्' की एक नवीन संकल्पनाको जन्म दिया है, जो स्वास्थ्य सेवाओंकी बेहतरी और पर्यावरण-संरक्षणको सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए, अब आगे बढ रही है। 'कोविड-

प्राप्तिके लिये सामाजिक और आर्थिक विकासको

पर्यावरणसे जोडकर देख रहा है। भावी पीढियोंकी जरूरतोंसे समझौता किये बिना, वर्तमानमें विकासकी

भाग ९६

पर्यावरण स्थिरताको सुनिश्चित करते हुए, जैव विविधताको अक्षुण्ण रखना होगा। ऐसे समयमें सतत विकास और पर्यावरण-संरक्षणसे जुड़ा सन्त जाम्भोजीका चिन्तन-मनन और इस विषयमें उनकी दूरदृष्टिके वैज्ञानिक 

१९' महामारीके बाद उत्पन्न परिस्थितियाँ दर्शाती हैं

कि अब हमें पर्यावरण-संरक्षणके प्रति हमारी सोच,

रवैये और नजरियेको बहुत ही संवेदनशील और सकारात्मक करनेकी जरूरत है। अब हमें हमारी

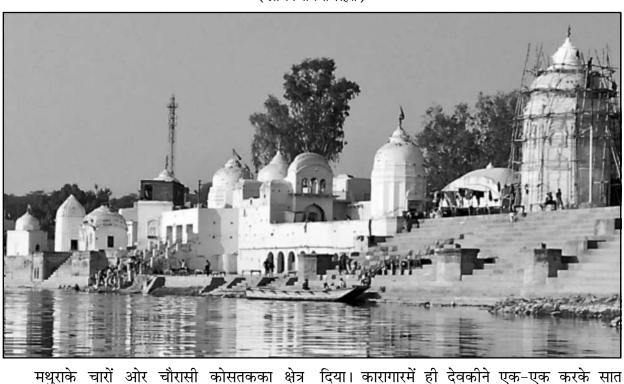
नैतिक जिम्मेदारी और दृढ़ राजनीतिक इच्छा-शक्तिसे

ब्रजक्षेत्रका प्राचीन तीर्थ—वटेश्वर

संख्या २ ]

प्रजास्त्रका प्राचान ताथ — वटश्वः (श्रीजगनाथजी लहरी)

ब्रजक्षेत्रका प्राचीन तीर्थ—वटेश्वर



जिलेकी बाह तहसीलमें प्राचीन तीर्थस्थल वटेश्वर है। यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णने मथुरामें अवतार लिया था, परंतु उनकी पैतृक भूमि वटेश्वर ही थी। वटेश्वर, जो

ब्रजक्षेत्र कहलाता है। इसी ब्रजक्षेत्रके अन्तर्गत आगरा

वसुदेवका विवाह मथुराके राजा उग्रसेनकी पुत्री तथा कंसकी बहिन देवकीके साथ हुआ था। विवाहोपरान्त

शौरिपुरके नामसे भी ज्ञात है, उस समय राजा शूरसेनकी

राजधानी थी। राजा शूरसेनके सातवें पुत्र राजकुमार

जब राजकुमार वसुदेव देवकीको विदा कराके ले जा रहे थे, तो बहिन देवकीके प्रति अत्यधिक स्नेहके कारण कंस ही उनका रथ चला रहा था, परंतु उसी समय एक

आकाशवाणी हुई कि 'हे कंस! तू अपनी जिस बहिन देवकीको इतनी हँसी-खुशीके साथ विदा कर रहा है, उसीकी कोखसे जन्मा आठवाँ पुत्र तेरा काल बनेगा।'

इस आकाशवाणीको सुननेके बाद कंसका हृदय-परिवर्तन हो गया और उसने अपनी बहिन देवकी और

बहनोई वसुदेवको गिरफ्तार करके कारागारमें बन्द कर

संतानोंको जन्म दिया। कंस देवकीके संतानोत्पत्तिकी सूचना पाते ही तत्काल जेलमें जाकर उसकी संतानका

वध कर डालता था। इस प्रकार उसने देवकीके छ: पुत्रोंकी हत्या कर दी। देवकीके सातवें गर्भका संकर्षणकर योगमायाने उसे वसुदेवकी दूसरी पत्नी रोहिणीके उदरमें

स्थापित कर दिया, जो कंसके भयसे उस समय व्रजमें नन्दजीके यहाँ रह रही थी। आठवीं संतानके रूपमें स्वयं श्रीविष्णु भगवान् श्रीकृष्णके रूपमें देवकीके यहाँ अवतरित

कारागारके सभी पहरेदार गहरी निद्रामें सो गये और कारागारके फाटक स्वयं खुल गये। वसुदेव एक टोकरीमें नवजात शिशुको सिरपर रखकर उफनती हुई

हुए। उस समय एक अलौकिक चमत्कार हो गया।

यमुनाको पार करके गोकुल पहुँचे, बाबा नन्दकी धर्मपत्नी माता यशोदाने उसी समय एक कन्याको जन्म

दिया था। वसुदेवने श्रीकृष्णको कन्याकी जगह लिटा दिया और कन्याको टोकरीमें रखकर पुनः यमुना पार

करते हुए कारागारमें वापस आ गये। वसुदेवके सकुशल

भाग ९६ श्रीनेमिनाथके नामसे प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार वटेश्वरके वापस आनेके बाद कारागारके फाटक स्वत: ही बन्द इस राजवंशको ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि उसके हो गये। नवजात कन्या रुदन करने लगी, जिसे सुनकर पहरेदार जाग गये और उन्होंने कंसको आठवीं संतानकी एक ही परिवारके दो राजकुमारोंने एक ही समयमें सूचना दी। कंस तो इसी क्षणकी प्रतीक्षा कर रहा था। सनातन धर्म और जैन धर्ममें शीर्षस्थान प्राप्त किया। वह तत्काल कारागार पहुँचा और उसने देवकीकी गोदसे वटेश्वर (शौरिपुर) जैन धर्मावलंबियोंके लिये एक कन्याको छीनकर पत्थरपर दे मारा। कन्या योगमाया थी, पवित्र क्षेत्र है। प्रतिवर्ष देशके कोने-कोनेसे लाखों कंसके हाथसे छूटकर वह आकाशमें चली गयी और जैन यात्री यहाँ भगवान् नेमिनाथके दर्शनार्थ आते हैं। बोली—'मूर्ख! तुझे मारनेवाला जन्म ले चुका है।' उधर वटेश्वर यमुनाके तटपर बसा हुआ है। यहाँ १०८ देवकीकी असली सन्तान भगवान् श्रीकृष्णका लालन-मंदिर पंक्तिबद्ध बने हुए हैं। यमुना-तटपर ही एक पालन तो बाबा नन्दके घर गोकुलमें हो रहा था। विशाल वट वृक्ष है, उसके निकट ही वटेश्वरनाथका कालान्तरमें भगवान् श्रीकृष्णने मथुरामें आकर कंसका बडा शिव-मन्दिर है। यमुनासे थोडी दुरपर शौरिपुरका प्रसिद्ध जैन मन्दिर है। जैन मतके श्वेताम्बर और वध करके अपने माता-पिता वसुदेव और देवकीको कारागारसे मुक्त किया। आज सारा विश्व भगवान् दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंके लिये यह स्थान आदरणीय श्रीकृष्णको मथुरा, गोकुल, वृन्दावनसे ही सम्बन्धित है। वह स्थान जहाँ श्रीनेमिनाथजीकी जन्मभूमि है, वहाँ जानता है, परंतु बहुत कम लोगोंको यह ज्ञात है कि प्रसिद्ध जैन मुनि सुप्रतिष्ठितकी ज्ञानकल्याणक भूमि है भगवान् श्रीकृष्णकी पैतृक भूमि तो वटेश्वर है। और धन्य मुनि एवं यमकेवलीकी निर्वाणभूमि है। इस वटेश्वर सतयुगसे ही एक पवित्र तीर्थ रहा है, प्रकार वटेश्वर जैन धर्मका प्रमुख स्थान है। इसकी महिमामें यह मांगलिक श्लोक प्रसिद्ध है-पुरातत्त्वकी सामग्रीसे यह स्थल भरा पड़ा है। तुंगप्रभासो गुरुचक्रपुष्करं गयाविमुक्तो बदरी वटेश्वरः। यहाँपर हजारों ही नहीं, लाखों कलात्मक मूर्तियाँ केदारपम्पाशरनैमिषारकं कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा॥ खुदाईमें प्राप्त हुई हैं। दसवीं सदीतककी कुछ प्रतिमाएँ इस प्रकार भारतके प्रमुख प्राचीन पवित्र तीर्थोंमें लखनऊ संग्रहालयमें सुरक्षित हैं तथा शौरिपुरमें तेरहवीं वटेश्वरकी भी गणना है, जिससे वटेश्वरके महत्त्वको शताब्दीतककी सैकडों प्रतिमाएँ मंदिरके संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। यहाँसे एक मील दूर पुराना खेड़ा नामक भली प्रकार समझा जा सकता है। एक स्थान है, जहाँपर पुरातत्त्व-सम्बन्धी सामग्रीका एक राजा शुरसेनके समयमें वटेश्वर (शौरिपुर)-का विशाल भण्डार छिपा होनेका अनुमान है। वटेश्वरमें विस्तार बारह योजनमें था। आगरा, शिकोहाबाद, भिण्ड, अटेर आदि सभी जनपद इसी महाजनपदमें शामिल भवन-निर्माणके लिये बुनियाद खोदते समय अब भी मूर्तियाँ मिलती हैं। यहाँके निवासियोंने हजारोंकी संख्यामें थे। राजा शूरसेनके ज्येष्ठ पुत्र समुद्रविजयने उनके बाद शासनकी बागडोर सँभाली। समुद्रविजयके पुत्र पुरातत्त्वकी यह अमूल्य निधियाँ यमुनामें विसर्जित कर दी हैं। हिन्दू देवोंके मन्दिरोंमें भी सैकड़ों खण्डित मूर्तियाँ और भगवान् श्रीकृष्णके चचेरे भाई श्रीनेमिकुमारकी बारात जब जुनागढ़ पहुँची, तो वहाँ नेमिकुमारने रखी हुई हैं, जिनकी पूजा की जाती है। जैन मूर्तियोंके बरातियोंके मांसाहारके लिये सैकड़ों पशुओंको जब अतिरिक्त यहाँ बौद्ध मूर्तियाँ भी पायी गयी हैं, परंतु एक बाड़ेमें बन्द देखा तो उन्हें वैराग्य हो गया और यमुनाके तटपर जो १०८ मंदिर बने हुए हैं, उनमेंसे वे विवाह न करके गिरनारपर्वतपर तपस्याहेतु चले अधिकांश शिव-मन्दिर हैं। गये। यही नेमिकुमार जैन धर्ममें २२वें तीर्थंकर वटेश्वरमें एक और विशेषता यह है कि यमुनाकी

ब्रजक्षेत्रका प्राचीन तीर्थ—वटेश्वर संख्या २ ] \* जिसका हवनकुण्ड और यज्ञकी पचास बीघा भूमि आज धारा यहाँ विपरीत दशामें प्रवाहित होती है। जहाँ यमुना सब जगह पूर्ववाहिनी हैं, वहाँ वटेश्वरमें यमुना कई मीलतक भी सुरक्षित है। पता नहीं ऐसी कौन-सी शक्ति थी, जिसके कारण वटेश्वरकी इस पुण्यभूमिको अपवित्र करनेका पश्चिमवाहिनी है। यमुना वटेश्वरके तीनों ओर बहती हैं। यमुनाका यह प्रवाह एक बड़ा बाँध बनाकर मोड़ा गया है। विधर्मियोंको साहस नहीं हुआ? यही नहीं, संन्यासी संप्रदायका भी वटेश्वर एक प्रमुख गढ़ है। यहाँ दसनामी बाँधके निर्माणके बाद हजारों एकड़ अतिरिक्त भूमि संन्यासी सरस्वती, गिरि, पुरी, भारती, वन, पर्वत, अरण्य, निकल आयी, जहाँ कार्तिक शुक्ल पंचमीसे लेकर अगहन वदी पंचमीतक एक विशाल पश्-मेला प्रतिवर्ष तीर्थ, आश्रम, सागर इत्यादिका भी वटेश्वर सैकड़ों वर्षोंसे लगता है। कोई भी निश्चित रूपसे यह नहीं बता सकता एक प्रमुख गढ़ है। कुमारिल भट्टने जगदुगुरु शंकराचार्यको वटेश्वरमें आमन्त्रित किया था। स्कन्दपुराणमें भी वटेश्वरके है कि यह मेला किसने और कब प्रारम्भ किया था? सम्बन्धमें विशद वर्णन मिलता है। भगवान् श्रीकृष्ण परंतु अब इस मेलेका प्रबन्ध जिला परिषद्, आगरा मथुराके भांजे थे, अत: अनेक संतोंने वटेश्वरको भगवान् करती है। मेलेके दौरान ही कार्तिक शुक्ल पूर्णिमाको श्रीकृष्णकी पैतृक भूमि होनेके कारण तीर्थोंके भांजेके लाखों तीर्थयात्री यमुनाके पवित्र जलमें स्नान और शिवजीकी पूजाहेतु यहाँ आते हैं। रूपमें भी मान्यता दी है। पावस ऋतुमें ऐसा कौन-सा व्यक्ति होगा, जिसका वटेश्वर कई बार बसा और उजडा है। प्रारम्भमें जहाँ आज शौरिपुर है, वहीं वटेश्वर बसा था। उसके हृदय आल्हा सुनकर गद्गद न हो जाता हो। इसी आल्हाके बाद आदिशक्ति बड़ी देवीजीके मन्दिरके पास वटेश्वर प्रमुख नायक आल्हा और ऊदलने भी वटेश्वरमें एक बसा और फिर यमुनाके तटपर वटेश्वर बसाया गया। टीलेपर हनुमान्जीकी मूर्ति स्थापित की थी। घाटसे कुछ वटेश्वर एक चमत्कारिक स्थल है, जहाँ जैन और दूर यमुनाके टीलेपर जो विशाल हनुमान्जीकी मूर्ति है, उसे ही लोग आल्हा-ऊदलद्वारा स्थापित बताते हैं। आज हिन्दुओंके सैकड़ों मन्दिर बने हुए हैं। इतिहास यह बतलाता है कि कुछ मुस्लिम शासकोंने हिन्दू मन्दिरोंको ब्रजमें मथुराके गौरवके कारण वटेश्वर एक अल्पख्याति तीर्थ रह गया है, परंतु अतीतमें वटेश्वरका गौरव महान् था नष्ट-भ्रष्ट करके मूर्तियोंकी तोड़-फोड़ भी की थी। और इसे भदौरिया राजाओंकी राजधानी होनेका भी गौरव अयोध्याका श्रीरामजन्मभूमिका मन्दिर, वाराणसीका विश्वनाथजीका मन्दिर और मथुराका श्रीकृष्णजन्मभूमिका प्राप्त था। भदौरिया नरेशोंके भवनोंके विशाल खण्डहर इस नगरकी भव्यताके साक्षी हैं। वटेश्वरके मन्दिरोंमें देशकी मन्दिर मुस्लिम शासकोंकी धर्मान्धता और अत्याचारके साक्षी हैं, परंतु ब्रजक्षेत्रमें स्थित होनेपर भी वटेश्वरमें किसी अनेक कला-शैलियोंके दर्शन होते हैं। पूरब, पश्चिम, भी शासकने न तो मन्दिरोंका विध्वंस किया और न एक उत्तर, दक्षिण सभी जगहोंके पण्डितों और शिल्पियोंने वटेश्वरके गौरवको बढ़ानेमें अपना अनुपम सहयोग दिया भी मूर्तिकी तोड़-फोड़ की गयी। इसके विपरीत वटेश्वरकी था, परंतु वटेश्वर-जैसे प्राचीन और पवित्र पुण्यभूमिके भूमि इस बातकी साक्षी है कि भारतके पूरब, पश्चिम, विशाल मन्दिर और घाट धीरे-धीरे यमुनाकी गोदमें विलीन उत्तर, दक्षिण सभी जगहोंसे दक्षिण भारत, गुजरात, होते चले जा रहे हैं, जिनकी रक्षाहेतु पुनरुद्धार एवं पुन: बनारस, मथुरा, कश्मीर आदि स्थानोंसे सैकडों पण्डित परिवार अपने धर्मकी रक्षाहेतु वटेश्वरमें शरण लेने आये निर्माणकी आवश्यकता है। पुरातत्त्वकी यह धरोहर हम और यहीं बस गये। आज भी वटेश्वरमें इन पण्डितोंके सबके लिये रक्षणीय है। हिंदू और जैन संस्कृतिके प्रमुख अलग-अलग मोहल्ले बसे हुए हैं। जहाँगीरके शासनकालमें तीर्थ, भगवान् श्रीकृष्ण और नेमिनाथकी पैतृक भूमिकी तो यहाँ वाजपेयी ब्राह्मणोंने एक विशाल यज्ञ किया था, पवित्र रजको शत-शत नमस्कार!

सन्त माधवदासकी गोभक्ति गो-चिन्तन—

िभाग ९६

उन यवन सिपाहियोंको गाजर-मूलीकी तरह काटना

प्रारम्भ किया। सिपाहियोंकी जानपर बन आयी। कुछ तो मारे गये और कुछ भाग गये। सिसोदिया वंशके

उस वीरने सब गायें छुड़ा लीं और रोते हुए ग्वालोंके

ली। वे समर्थदास नामक एक योगीके शिष्य हो गये।

सन्त माधवदासजी सच्चे सन्त थे, उनका अधिकांश समय तीर्थाटनमें ही बीतता था। गोमाताके प्रति उनकी

लगा दिया। मुलतानके मुसलिम सूबेदारने उन्हें तरह-

तरहसे प्रताड़नाएँ देनेकी कोशिश की, परंतु माधवदासजी सिद्ध सन्त थे, वह उनका बाल भी बाँका न कर सका

और अन्तमें उनके चरणोंमें गिरकर क्षमा-याचना की

त्यागकर अविनाशी परब्रह्म प्रभुके स्वरूपमें अवस्थित हो

गये। धन्य हैं ऐसे सन्तरत्न और गोभक्त माधवदासजी

और धन्य है भारत-धरा ऐसे सपूतको प्राप्तकर!

वि०सं० १६५२ में आप इस नश्वर शरीरको

और भविष्यमें किसीको न सतानेकी कसम खायी।

माताकी प्रेरणासे माधवदासजीने सद्गुरुकी शरण

उबल पड़ा। वे तलवार लेकर उनपर टूट पड़े। एक तरफ सन्त माधवदासका जन्म वि० सं० १६०१ में

कार्तिक शुक्ल पूर्णिमाको सूरतके सौदागरगंजमें हुआ अकेले माधवदास और दूसरी ओर पचास सैनिक! पर

था। इनके पिताका नाम करवत सिंह और माताका नाम

सिंह सिंह होता है, मांसलोभी सैकडों सियारोंका झुंड

उसकी एक दहाड़पर भाग खड़ा होता है।

हिरलदेवी था। इनके पूर्वज मेवाडके केलवाडा नामक

माधवदासमें सत्साहस था, गोमाताके प्रति प्रेम

परगनेके निवासी थे और प्रसिद्ध सिसोदिया वंशके

सर्यवंशी क्षत्रिय थे। था: उधर सैनिकोंमें था सत्ताका अभिमान। माधवदासने

बाल्यावस्थामें माधवदासजीकी मुखाकृति देखकर

एक अवधूत महात्माने उनके पितासे कहा था कि यह

बालक कोई महान् दिव्यात्मा होगा। ये बचपनसे ही बड़ी उदार वृत्तिके थे और दरवाजेपर आये भिक्षुकको

निराश नहीं जाने देते थे। जब ये मात्र पाँच वर्षके ही

थे, तभी इनके पिताका देहान्त हो गया था। अत: इनका पालन-पोषण इनकी माताद्वारा ही हुआ। माताने इन्हें

अच्छा विद्याभ्यास तो कराया ही, एक राजपूत वीरके

लायक शस्त्रास्त्रकी योग्यता भी इन्हें बचपनमें ही प्राप्त

क्रींन्न्र्रा Uiscord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

सुपुर्द कर दीं।

हो गयी थी। अद्भुत भक्ति थी। उन्होंने दिल्लीके शाही कसाईखानेके एक बार ये भ्रमण करते हुए अहमदाबादके पास जल्लाद हाशमको अपने उपदेशसे भगवान्की भक्तिमें

पहुँचे। वहाँ इन्होंने देखा कि कुछ मुसलमान ग्वालोंसे

और हाकिमकी आज्ञा थी, इसलिये कोई कुछ बोल भी नहीं सकता था। पचास मुसलमान सैनिकोंकी एक

उनकी गायें छीनकर ले जा रहे हैं। ईदका त्योहार था

टुकड़ी गायोंको घेरकर लेकर चल दी, मुसलमानी

शासनमें ग्वाले भला रोनेके अतिरिक्त और कर ही क्या

सकते थे? गायें रॅंभा रही थीं, चाबुकोंकी मार खा रही

थीं, उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी। यह

सब माधवदासजीसे देखा न गया। उनका राजपूती रक्त

बोध-कथा-

सभ्यता

फ्रान्सका राजा हेनरी चतुर्थ एक दिन पेरिस नगरमें अपने अंगरक्षकों तथा उच्चाधिकारियोंके साथ कहीं

जा रहा था। मार्गमें एक भिक्षकने अपनी टोपी सिरसे उतारकर मस्तक झुकाकर उसे अभिवादन किया।

हेनरीने भी अपनी टोपी उतारकर सिर झुकाकर भिक्षुकको अभिवादन किया। यह देखकर एक उच्चाधिकारीने

कहा—'श्रीमान्! एक भिक्षुकको आप इस प्रकार अभिवादन करें, यह क्या उचित है?'

हेनरीने सरलतासे उत्तर दिया—फ्रान्सका नरेश एक भिक्षुक-जितना भी सभ्य नहीं, यह मैं सिद्ध नहीं

संख्या २ ] सुख-दुःख

सत्संग सन्तोंके संग—

## सुख-दुःख [ ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजके प्रवचनोंसे संकलित ]

🛊 सुखकालमें जो सुखके चले जानेकी विस्मृति होती है, उसीसे दु:ख आता है।

🛊 मंगलमय विधानसे दु:ख बार-बार इसलिये आता है कि सुखका प्रलोभन मिटे, रसकी अभिव्यक्ति हो,

जो मानवमात्रकी मौलिक माँग है। 🕏 जब हम अपनी मौलिक माँगको भूलकर सुखमें लिप्त हो जाते हैं, तब हमें सजग करनेके लिये दु:ख

आता है।

🔹 वास्तवमें मनुष्यको अपने वास्तविक सुख-दु:खका ज्ञान नहीं है। वह अपने मनकी बात पूरी होनेको

सुख और पूरी न होनेको दु:ख मानता है।

🍁 जब मनुष्य सचमुच दुखी हो जाता है, तब उस समय उसकी किसी प्रकारके सुख-भोगमें प्रवृत्ति नहीं

होती और भोगवासनाका अन्त हो जाता है।

🔹 जब संसारसे अरुचि हो जाती है, तब वह दु:ख मनुष्यको प्रभुसे मिला देता है; क्योंकि सुखभोगकी

रुचि और प्रवृत्तिसे ही मनुष्य उनसे विमुख होता है और भोगवासनाकी निवृत्तिसे भगवान्के सम्मुख एवं

संसारसे विमुख होता है।

🕏 कोई भी बुराई किसीके जीवनमेंसे उस समयतक नहीं निकल पाती, जबतक कि बुराईजनित वेदनाकी

मात्रा बुराईजनित सुख-लोलुपतासे अधिक न बढ़ जाय।

🕏 जिस समय आप अपनी भूलसे पीड़ित होंगे, भूलजनित सुख-लोलुपताका नाश होगा और जब भूलजनित सुख-लोलुपताका नाश हो जायगा, तब भूल स्वत: पुन: उत्पन्न नहीं होगी।

🍁 हम संसारको असत्य और दु:खद जानकर भी उसका त्याग और भगवानुको अपना तथा सुखधाम मानकर भी उनसे प्रेम नहीं कर पाते। इसका एकमात्र कारण यही है कि हम संसारसे सुखकी आशा करते रहते

हैं एवं उस सर्व-समर्थ प्रभुको सरल हृदयसे अपना नहीं मानते। 🏚 जो दूसरे प्राणियों या पदार्थींको अपने सुख और दु:खका हेतु मानता है, उसका सब प्रकारसे पतन होता

है; क्योंकि जिस प्राणी या पदार्थको वह अपने सुखमें हेतु मानता है, उसमें उसका राग हो जाता है

और जिसको दु:खका हेतु मानता है, उससे द्वेष हो जाता है।

🍁 जबतक मनुष्य संसारसे कुछ लेनेकी आशा रखता है, तबतक वह कभी सुखी नहीं हो सकता; क्योंकि

संसार अनित्य और क्षणभंगुर है। उससे जो कुछ मिलता है, उसका वियोग अवश्यम्भावी है।

🔹 प्रत्यक्ष देखा जाता है कि स्वावलम्बी मनुष्य जितना सुखी और प्रसन्न रहता है, पराधीन व्यक्ति कभी

वैसा प्रसन्न नहीं रह सकता। मनुष्य अज्ञानसे ऐसा मान लेता है कि मुझे बडा भारी अधिकार मिलने या बहुत-सी सम्पत्ति मिलनेसे में सुखी हो जाऊँगा, परंतु जैसे-जैसे वैभव बढ़ता है, वैसे-ही-वैसे उसके

जीवनमें पराधीनता, भय, रोग, भोगासक्ति और कठोरता आदि बढ़ते जाते हैं, जो प्रत्यक्ष ही दु:खके कारण हैं। 🕏 किसीका भी संयोग नित्य सुख देनेवाला नहीं है; क्योंकि अपने प्रिय-से-प्रिय मित्रसे भी मनुष्य अलग

होना चाहता है। कोई भी वस्तु कितनी भी प्रिय क्यों न हो, उससे भी अलग होता है। यदि सचमुच कोई व्यक्ति, वस्तु और देश-काल सुखप्रद होता तो प्राणी उसे कभी नहीं छोड़ता, परंतु ऐसा नहीं होता। 88

सुभाषित-त्रिवेणी |

# भक्तके लक्षण [Characteristics of a devotee]

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च। He who wants nothing, who is both inter-

निरहङ्कारः समदुःखसुखः निर्ममो

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः। मय्यर्पितमनोबुद्धियों मद्भक्तः स मे प्रियः॥

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित,

सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित,

अहंकारसे रहित, सुख-दु:खोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान्

है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है; तथा जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको

वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है—वह मुझमें

अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है। He who is free from malice towards all be-

ings, friendly and compassionate, and free from

the fellings of 'I' and 'mine', balanced in joy and sorrow, forgiving by nature, ever-contented and mentally united with Me, nay, who has subdued his mind, senses and body, has a firm re-

solve, and has surrendered his mind and reason

to Me—that devotee of Mine is dear to Me. यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥ जिससे कोई भी जीव उद्वेगको प्राप्त नहीं होता और

जो स्वयं भी किसी जीवसे उद्गेगको प्राप्त नहीं होता: तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिसे रहित है-वह भक्त मुझको प्रिय है।

He who is not a source of annoyance to his fellow-creatures, and who in his turn does not feel vexed with his fellow-creatures, and who is

free from delight and envy, perturbation and fear, is dear to Me. अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।

सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

जो पुरुष आकांक्षासे रहित, बाहर-भीतरसे शुद्ध चतुर, पक्षपातसे रहित और दु:खोंसे छूटा हुआ है—वह सब आरम्भोंका

nally and externally pure, is wise and impartial

and has risen above all distractions, and who renounces the sense of doership in all undertak-

ings—such a devotee of Mine is dear To Me. यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचित न काङ्क्षति।

शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥ जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक

करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है-वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है।

He who neither rejoces nor hates, nor

Me.

grieves, nor desires, and who renounces both good and evil actions and is full of devotion, is dear to

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।

शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥ तुल्यनिन्दास्तुतिमौनी सन्तुष्टो येन केनचित्। अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥

जो शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है तथा सरदी, गरमी और सुख-दु:खादि द्वन्द्वोंमें सम है और

आसक्तिसे रहित है। जो निन्दा-स्तृतिको समान समझनेवाला,

मननशील और जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका

निर्वाह होनेमें सदा ही सन्तुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है-वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान पुरुष मुझको प्रिय है।

He who deals equally with friend and foe, and is the same in honour and ignominy, who is alike in heat and cold, pleasure and pain and other contrary experiences, and is free from attachment,

he who takes praise and reproach alike, and is given to contemplation and is contented with any means of subsistence available, entertaining no sense of ownership and attachment in respect of his

dwelling-place and is full of devotion to Me, that person is dear to Me. [ श्रीमद्भगवद्गीता १२। १३—१९ ]

व्रतोत्सव-पर्व

वसन्तोत्सव ( होली )।

**मेषका सुर्य** रात्रिमें १२ ।५७ बजे।

वृश्चिकराशि दिनमें ३।५३ बजेसे।

मूल सायं ४। ४६ बजेतक।

भौमप्रदोषव्रत।

रात्रिशेष ४। १७ बजेसे।

मकरराशि रात्रिमें ८। ४४ बजेसे।

पापमोचनी एकादशीव्रत (सबका)।

अमावस्या, मूल दिनमें १०। २२ बजेसे।

चैत्र नवरात्र—'राक्षस' संवत्सर प्रारम्भ।

मत्स्यावतार, मूल दिनमें १२।१२ बजेतक।

रात्रिमें ९।१९ बजे, शक सं० १९४४ प्रारम्भ।

भद्रा प्रातः ७।५ बजेसे सायं ५।५८ बजेतक।

भद्रा रात्रिमें ३।२२ बजेसे, मुल रात्रिमें ८।५ बजेसे।

**भद्रा** दिनमें २।१० बजेतक, **धनुराशि** सायं ६।२७ बजेसे।

वतोत्सव-पर्व

२० "

२१ "

२२ "

२३ "

२४ "

२५ ,,

२६ "

२७ ,,

२८ "

२९ "

₹0 "

३१ "

१ अप्रैल

दिनांक

₹ "

**9** ,,

सं० २०७८, शक १९४३-१९४४, सन् २०२२, सूर्य उत्तरायण, वसन्तऋतु, चैत्र-कृष्णपक्ष

तिथि नक्षत्र दिनांक

प्रतिपदा दिनमें १२।१२ बजेतक शनि १९ मार्च

हस्त रात्रिमें १२।२९ बजेतक द्वितीया ,, ११।५ बजेतक रिव चित्रा ,, ११।५० बजेतक

तृतीया ,, ९।३४ बजेतक | सोम | स्वाती ,, १०।५१ बजेतक

संख्या २ ]

चत्र्थी प्रात: ७।४३ बजेतक मंगल विशाखा ,, ९। ३४ बजेतक

बृध अनुराधा " ८।५ बजेतक

षष्ठी रात्रिमें ३।२२ बजेतक सप्तमी "१२।५८ बजेतक । गुरु

अष्टमी 🔊 १० । ३३ बजेतक शक्र मूल 🦙 ४।४६ बजेतक

ज्येष्ठा सायं ६।२७ बजेतक नवमी ,, ८।१२ बजेतक शिन

पृ०षा० दिनमें ३।७ बजेतक दशमी सायं ५।५८ बजेतक रवि उ०षा० 🗤 १ । ३७ बजेतक

एकादशी दिनमें ३।५७ बजेतक सोम श्रवण 🔊 १२। १७ बजेतक

मंगल धनिष्ठा ,, ११। १४ बजेतक

द्वादशी 🔑 २ । १४ बजेतक

त्रयोदशी "१२।५२ बजेतक बिध शतभिषा "१०।३० बजेतक पू०भा० "१०।५० बजेतक

चतुर्दशी ,, ११।५५ बजेतक | गुरु अमावस्या " ११ । २७ बजेतक । शुक्र । उ०भा० ,, १०। २२ बजेतक

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य उत्तरायण, वसंतऋतु, चैत्र-शुक्लपक्ष

तिथि नक्षत्र

प्रतिपदा दिनमें ११।२७ बजेतक | शनि | रेवती दिनमें ११।१ बजेतक

२ अप्रैल अश्वनी ,, १२।१२ बजेतक

द्वितीया " १२।१ बजेतक रिव भरणी ,, १।४८ बजेतक तृतीया 😗 १।२ बजेतक सोम

कृत्तिका ,, ३।५३ बजेतक चतुर्थी 🕖 २ । ३१ बजेतक 🛮 मंगल रोहिणी सायं ६।१५ बजेतक

पंचमी दिनमें ४।१९ बजेतक बुध मृगशिरा रात्रिमें ८ । ५१ बजेतक

शुक्र

अष्टमी " १०।२५ बजेतक शनि

षष्ठी सायं ६।२२ बजेतक । गुरु सप्तमी रात्रिमें ८। २७ बजेतक

नवमी " १२।७ बजेतक रिव दशमी " १ । २४ बजेतक सोम

गुरु

चतुर्दशी " १ । ४३ बजेतक | शुक्र | उ०फा० ८ । ३१ बजेतक

एकादशी <table-cell-rows> २ । १५ बजेतक

त्रयोदशी <table-cell-rows> २। २६ बजेतक

द्वादशी 🔈 २ । ३९ बजेतक बिध

पूर्णिमा रात्रिमें १२।३५ बजेतक । शनि ।

आर्द्रा ,, ११। २८ बजेतक

पुनर्वसु ,, १।५६ बजेतक पुष्य रात्रिशेष ४।८ बजेतक

अश्लेषा अहोरात्र

१० ,,

मंगल

आश्लेषा प्रातः ५ । ५५ बजेतक १२ 꺴

११ "

हस्त रात्रिमें ८।२३ बजेतक १६ "

मघा ,, ७।१८ बजेतक

पु॰फा॰ दिनमें ८।१० बजेतक १४ ,,

१५ ,,

१३ "

भद्रा रात्रिमें १।४३ बजेसे।

बजेसे, पूर्णिमा, वैशाखस्नान प्रारम्भ।

मिथुनराशि दिनमें ७। ३३ बजेसे।

दिनमें १०।५२ बजे, वैशाखी, खरमास समाप्त।

(सबका), सिंहराशि प्रातः ५।५५ बजेसे।

श्रीरामनवमी, मूल रात्रिशेष ४। ८ बजेसे।

प्रदोषव्रत, कन्याराशि दिनमें २। १५ बजेसे, मेष संक्रान्ति

भद्रा दिनमें १।९ बजेतक, श्रीहनुमज्जयन्ती, तुलाराशि रात्रिमें ८।६

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा रात्रिमें १०।२० बजेसे, तुलाराशि दिनमें १२।९ बजेसे, सायन

भद्रा दिनमें ९। ३४ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय

कुम्भराशि रात्रिमें ११।४६ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें ११।४६ बजे,

**भद्रा** दिनमें १२। ५२ बजेसे रात्रिमें १२। २४ बजेतक, **मीनराशि** 

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

मेषराशि दिनमें ११। १ बजे, पंचक समाप्त दिनमें ११। १ बजे,

भद्रा रात्रिमें १।४७ बजेसे, वृषराशि रात्रिमें ८।२० बजेसे, गणगौर।

भद्रा दिनमें २। ३१ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।

श्राद्धकी अमावस्या, रेवतीका सूर्य रात्रिमें ९।३१ बजे।

भद्रा रात्रिमें ८। २७ बजेसे, महानिशापूजा।

भद्रा दिनमें ९।२६ बजेतक, **कर्कराशि** रात्रिमें ७।१९ बजेसे, **श्रीदुर्गाष्टमीव्रत।** भद्रा दिनमें १।४९ बजेसे रात्रिमें २।१५ बजेतक, कामदा एकादशीव्रत

कृपानुभूति प्रदोष-व्रतकी महिमा विदर्भ-देशमें सत्यरथ नामके एक परम शिवभक्त, सत्यरथका पुत्र है, राजाका देहान्त हो गया है।

पराक्रमी और तेजस्वी राजा थे। उन्होंने अनेक वर्षींतक राज्य किया, परंतु कभी एक दिन भी शिवपूजामें किसी

प्रकारका अन्तर न आने दिया।

एक बार शाल्वदेशके राजाने दूसरे कई राजाओंको साथ लेकर विदर्भपर आक्रमण कर दिया। सात दिनतक

घोर युद्ध होता रहा, अन्तमें दुर्दैववश सत्यरथको परास्त

होना पड़ा, इससे दुखी होकर वे देश छोड़कर कहीं निकल गये। शत्रु नगरमें घुस पड़े। रानीको जब यह ज्ञात हुआ

तो वह भी राजमहलसे निकलकर सघन वनमें प्रविष्ट हो गयी। उस समय उसके नौ मासका गर्भ था और वह

आसन्नप्रसवा ही थी। अचानक एक दिन अरण्यमें ही उसे एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। बच्चेको वहाँ ही अकेला छोड़कर वह प्यासके मारे पानीके लिये वनमें एक सरोवरके

पास गयी और वहाँ एक मगर उसे निगल गया। उसी समय उमा नामकी एक ब्राह्मणी विधवा अपने

श्चित्रत नामक एक वर्षके बालकको गोदमें लिये उसी रास्तेसे होकर निकली। बिना नाल कटे उस बच्चेको देखकर उसे बडा ही आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी

कि यदि इस बच्चेको अपने घर ले जाऊँ तो लोग मुझपर अनेक प्रकारकी शंका करेंगे और यदि यहीं छोड़ देती हूँ

तो कोई हिंस्र पशु भक्षण कर लेगा। वह इस प्रकार सोच ही रही थी कि उसी समय यतिके वेषमें भगवान् शंकर

वहाँ प्रकट हुए और उस विधवासे कहने लगे—'इस बच्चेको तुम अपने घर ले जाओ, यह राजपुत्र है। अपने पुत्रके समान ही इसकी रक्षा करना और लोगोंमें इस

बातको प्रकट न करना, इससे तुम्हारा भाग्योदय होगा।' इतना कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये। ब्राह्मणीने उस

राजपुत्रका नाम धर्मगुप्त रखा। वह विधवा दोनोंको साथ लेकर उस बच्चेके माता-पिताको ढूँढ्ने लगी। ढूँढ्ते-ढूँढ्ते शाण्डिल्य ऋषिके पूर्वजन्ममें क्रोधवश प्रदोष-व्रतको अधूरा छोड़नेके कारण ही उसकी ऐसी गति हुई है तथा रानीने भी

पूर्वजन्ममें अपनी सपत्नीको मारा था, उसीने इस जन्ममें मगरके रूपमें इससे बदला लिया।' ब्राह्मणीने दोनों बच्चोंको ऋषिके पैरोंपर डाल

दिया। ऋषिने उन्हें शिवपंचाक्षरी मन्त्र देकर प्रदोष-व्रत करनेका उपदेश दिया। इसके बाद उन्होंने ऋषिका आश्रम छोड़कर एकचक्रा नगरीमें निवास किया और वहाँ

वे चार महीनेतक शिवाराधन करते रहे। दैवात् एक दिन शुचिव्रतको नदीके तटपर खेलते समय एक अशर्फियोंसे भरा स्वर्णकलश मिला, उसे लेकर वह घर आया। माताको यह देखकर अत्यन्त ही आनन्द हुआ और इसमें

उसने प्रदोषकी महिमा देखी। इसके बाद एक दिन वे दोनों लडके वनविहारके लिये एक साथ निकले, वहाँ अंशुमती नामकी एक

गन्धर्वकन्या क्रीडा करती हुई उन्हें दीख पड़ी। उसने धर्मगुप्तसे कहा कि 'मैं एक गन्धर्वराजकी कन्या हूँ, श्रीशिवजीने मेरे पितासे कहा है कि अपनी कन्याको सत्यरथ राजाके पुत्र धर्मगुप्तको प्रदान करना।'

गन्धर्वकन्याको 'यही धर्मगुप्त है' ऐसी जानकारी होनेपर उसने विवाहका प्रस्ताव रखा। धर्मगुप्तने वापस आकर अपनी मातासे यह बात

कही। ब्राह्मणीने इसे शिवपूजाका फल और शाण्डिल्य मुनिका आशीर्वाद समझा। बड़े ही आनन्दसे अंशुमतीके साथ धर्मगुप्तका विवाह हो गया। गन्धर्वराजने बहुत-सा धन और अनेकों दास-दासी उन्हें प्रदान किये। इसके

आश्रामधोंuiडाकुँचेblsटकिश्विनेS*e*नप्रकायाttpिक://dयह.gस्रु/खाha*क्षा*तक्षमें।श्रिप्राक्षोकेक्योशप्रानि ।दुअएEL**क्रक**न्यप्राप्ताविकारी

विदर्भ-राज्यको प्राप्त किया। वह सदा प्रदोष-व्रतमें शिवाराधन करते हुए उस ब्राह्मणी और उसके पुत्र शुचिव्रतके साथ जीवनपर्यन्त सुखसे राज्य करता रहा और

पश्चात् धर्मगुप्तने अपने पिताके शत्रुओंपर आक्रमणकर

पढो, समझो और करो संख्या २ ] पढ़ो, समझो और करो हमने बससे अपना सामान उतार लिया और (8) एक अपरिचितकी निष्काम सेवा-भावना होटलमें जाकर पता किया तो एक कमरा मिल गया। यह घटना मई १९७४ के अन्तिम सप्ताहकी है। हम उस कमरेमें रुक गये और विचार कर ही रहे थे उस समय मेरी पोस्टिंग जगदलपुर मध्यप्रदेश (अब कि भोजन करके विश्राम किया जाय कि मुझे फिरसे छत्तीसगढ़)-में थी। संघ लोकसेवा आयोग (यू०पी०एस० पेटमें दर्द होने लगा और जब शौचालयमें गया, तो आयोजित परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके उलटी-दस्तका ऐसा सिलसिला चला कि मैं वहींसे परिणामस्वरूप मेरी पोस्टिंग केन्द्रीय जल आयोग, नई चिल्लाया कि मेरी हालत बहुत खराब है। पत्नी मुझे शौचालयसे बिस्तरपर लायी और फिर कमरेमें ही दिल्लीमें सहायक निदेशकके पदपर हो चुकी थी और उलटी और दस्त होने लगे। मैं बेहोश-सा हो गया था। मुझे जून १९७४के अन्दर दिल्ली जाना था, इस कारण में अपने परिवारको अपने गाँव पहुँचानेके उद्देश्यसे पत्नी मुझे बताया गया कि मुझे खूनकी उलटी-दस्त होने लगे थे, तब मेरा बड़ा पुत्र जो चार सालका था, एवं दो छोटे बच्चोंको लेकर जगदलपुरसे रायपुरकी रात्रि-सेवावाली बसपर बैठ गया। मेरी तबीयत बिलकुल होटलके भोजन-कक्षमें जाकर रोते हुए पुकारने लगा ठीक थी। पूरे दिन दफ्तरमें काम करके शामको हलका कि मेरे पिताजी खुनकी उलटी करने लगे हैं, कोई हमारी मदद करनेकी कृपा करें। उस समय रात्रिके नाश्ता करके हमलोग बसपर सवार हुए थे। जगदलपुरसे कांकेरतककी यात्रामें एक बड़ी घाटी पड़ती है, जिसमें लगभग साढ़े दस बजे थे। कुछ लोग भोजन कर रहे अक्सर लोगोंको उलटी हो जाया करती है, पर मुझे कुछ थे। उनमेंसे एक सज्जन (हमारे लिये तो देवदृत सिद्ध नहीं हुआ; क्योंकि मैं तो १९६७ से १९७४के बीच दस-हुए) हमारे कक्षमें आये और पत्नीसे बोले कि अपने दोनों बच्चोंको लेकर कमरेसे बाहर आइये। सामान पन्द्रह बार यात्रा कर चुका था। मैं निश्चिन्त होकर बैठा था, पर जैसे ही कांकेरमें बस रुकी, मुझे पेटमें दर्द हुआ यहींपर रखकर ताला लगा दीजिये। आपके पतिको मैं और मैं पासके शौचालय चला गया। मुझे पतला दस्त उठाकर रिक्शेमें बैठाता हूँ। रिक्शा बाहर खड़ा है। हुआ और साथमें एक उलटी भी हुई। बस यहाँपर करीब इससे पूर्व उन सज्जनने किसीको भेजकर पता लगवाया कि शायद कोई प्राइवेट डॉक्टर मिल जाय तो ले आयें। आधा घंटा रुकती थी और यात्री रात्रिका भोजन करते पर कोई न मिला, तब सरकारी अस्पताल ले जानेका थे। बस एक होटलके सामने रुकी थी। हम तो अपना भोजन साथमें लिये हुए थे। पत्नीने कहा, भोजन कर निर्णय किया। उन्होंने हमें सरकारी अस्पताल पहुँचाया लेते हैं। मैंने कहा, 'मुझे ठीक नहीं लग रहा है, थोडा ही नहीं बल्कि चिकित्साका पूरा प्रबन्ध भी स्वयं रुक जाओ।' इतना कहते ही मुझे फिर दर्द हुआ और किया। फिर उलटीके साथ-साथ फिरसे दस्त भी हो गया। मैंने अस्पतालमें उस समय केवल एक नर्स थी। उन सज्जनने कहा कि इन्हें तुरन्त ड्रिप लगाओ, ईश्वरका स्मरण करते हुए विचार किया कि अब क्या करूँ ? मुझे ईश्वरीय प्रेरणा हुई कि आगेकी यात्रा स्थगित इनकी हालत बिगडती जा रही है। नर्सने कहा, मुझे पता नहीं ड्रिपका सामान कहाँ है। उन सज्जनने कर दो। मैंने पत्नीसे कहा कि मेरा विचार आगे यात्रा न करनेका है। उन्होंने भी सलाह दी कि यदि आपको इधर-उधर देखकर कहा कि इस आलमारीमें है, चाबी लाओ। उन्होंने आलमारी खोलकर सब सामान अच्छा नहीं लग रहा है तो आज रात यहीं होटलमें रुक लेते हैं, कल चले चलेंगे। निकालकर सामने रख दिया। अब प्रश्न था कि

भाग ९६ इन्जेक्शन लगानेकी व्यवस्था कैसे हो; क्योंकि उस कराया, वे आपके लिये मानो भगवान् बनकर आये समय डिस्पोजल सिरेन्ज नहीं हुआ करती थी। काँचकी थे। मैं भी उन्हें हार्दिक साधुवाद देता हूँ। होटलके मालिक जो बहुत बुजुर्ग थे, ने आगे यह भी कहा सिरेन्जको खौलते पानीमें उबालकर पुनः उपयोगहेत् कि बेटा, तुम बहुत भाग्यशाली हो, जो भगवान्की तैयार किया जाता था। उन सज्जनने खुद स्टोव जलाकर कृपासे बच गये, क्योंकि कल रात होटलमें जिसने इन्जेक्शनहेतु सिरेन्ज तैयार करके दी और उपयुक्त इन्जेक्शन भी किसी आलमारीमें-से ढूँढ़कर लाये और भी आपको देखा था, यही कह रहे थे कि इस आदमीका बचना मुश्किल है। ईश्वर ही कोई चमत्कार तब नर्ससे कहा कि अब इन्जेक्शन लगाकर ड्रिप भी चढा दीजिये। मेरी हालत देखकर उस नर्सको भी कर दें, तो ही बच सकेगा। मैंने होटलके मालिकसे दया आ गयी होगी और उसने उचित उपचार किया, कहा कि जो सज्जन रात्रिमें हमें अस्पताल ले आये थे, वे हमारे लिये ईश्वरकी कृपासे देवदूत बनकर जिसके परिणामस्वरूप मेरे उलटी-दस्त रुक गये और आये थे। उन्होंने जो प्रयास किये, उसीके परिणाम-होश भी आ गया। पता नहीं कितनी रात हो गयी स्वरूप मेरी जान बच सकी। यह ईश्वरकी कृपा ही होगी और जब उन सज्जनने देख लिया कि मैं खतरेसे है, अन्यथा इस अनजाने कस्बेमें हम कहाँ-कैसे बाहर हूँ, तभी वे अस्पतालमें मेरे बगलमें ही कुर्सीपर उपचार कराते। प्रात: समय मेरी तबीयत सामान्य होने लगी श्रीशुक्लाजीने मेरी पत्नी और बच्चोंको होटलमें थी। मैंने उन सज्जनसे अब उनका परिचय पृछा। भोजन कराया तथा होटलका कमरा खाली करवाकर उन्हें अस्पताल छोड़ गये और मेरे लिये खिचड़ीका उन्होंने बताया कि वे बुंदेलखण्डके रहनेवाले 'शुक्ला' ब्राह्मण हैं। यहाँ सर्विस करते हैं। हमने भी अपना प्रबन्ध कर दिया। उल्लेखनीय है कि श्रीशुक्लाजी तो परिचय दिया। तत्पश्चात् शुक्लाजी करीब १० बजे अविवाहित थे, तभी रातमें दस बजे होटलमें भोजन कर मेरी पत्नी और बच्चोंको साथ लेकर अस्पतालसे रहे थे। जब हमने बताया कि हम पटैरया हैं, तो उन्होंने कहा कि उनके मित्र भी पटैरया हैं, जो यहींपर रहते होटलके कमरेकी सफाई कराने गये। वहाँपर लोग चर्चा कर रहे थे कि रातमें जो मरीज यहाँसे अस्पताल हैं। शामको उनको लेकर आऊँगा। शामके समय गया था, वह बचा कि नहीं। हालत बहुत नाजुक श्रीशुक्लाजी अपने मित्र और उनकी पत्नीसहित आये थी, बचना मुश्किल था। आगे ईश्वरेच्छा। इसी और हमारे लिये भोजन भी लाये। दूसरे दिन श्रीशुक्लाजीके मित्र श्रीपटैरयाजी मेरी पत्नी और बच्चोंको अपने घरपर वार्तालापके बीच मेरी पत्नी उस कमरेकी सफाई करने लगीं, जिसमें रात्रिको हम रुके थे। होटलका मालिक ले गये तथा स्नानादिके पश्चात् भोजन कराया और बड़ी उत्सुकतासे पूछता है कि बेटी, आपके पतिकी शामके लिये टिफिन दे दिया। तीसरे दिनतक मेरी कैसी हालत है? उन्हें बताया गया कि वे ठीक हैं। तबीयत सामान्य हो गयी थी और मैं यात्रा करनेयोग्य इसके बाद होटलके मालिक स्वयं मुझे देखने अस्पताल हो गया। हमने शुक्लाजीसे आग्रह किया कि आप अपना बुंदेलखण्डका स्थायी पता लिखवा दीजिये और आये और मुझे ठीक हालतमें देखकर बहुत खुश हुए। उन्होंने बताया कि आपकी हालत देखकर कल दोपहरको हम जानेवाले हैं, उस समय अवश्य दर्शन दे रात कोई भी आपके पास आनेकी हिम्मत नहीं कर दीजियेगा। उन्होंने न तो अपना और न अपने मित्र रहा था, क्योंकि आपको हैजाके लक्षण थे। सभी श्रीपटैरयाजीका पता दिया और न हमारे जानेके समय नाक-मुँह दबाकर बचते हुए जा रहे थे। जो सज्जन बसस्टैण्डपर आये। हम तो यही मानते हैं कि ईश्वरकी आपको अस्पताल ले आये और आपका इलाज कृपासे वे हमारे लिये देवदूत बनकर आये और मुझे

संख्या २] पढ़	या २] पढ़ो, समझो और करो				
<u> </u>	55555555 1	**************************************			
मौतके मुँहसे निकाल लिया। उनकी निष्काम	सेवा-	( \$ )			
भावनाके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। यदि संसारवे	के दस	शम्भू महाराजका प्याऊ			
प्रतिशत व्यक्ति भी उनकी तरह हो जायँ, तो यह	दुनिया	बात उस समयकी है, जब मैं मात्र छ: वर्षका था।			
स्वर्ग बन जाय।—डॉ० भगवानदास पटैरया		वैशाखका महीना था, पिताजी और छोटे भाईके साथ मैं			
(२)		दोपहरमें पठारीसे सेहराई हाटमें, जो सोमवारको लगती है;			
मौनका अर्थ समझो		जा रहा था। धूप काफी तेज थी, रास्तेमें एक महुआका			
सिद्ध एवं ब्रह्मनिष्ठ संत उड़िया बाबा समय-स	नमयपर	पेड़ पड़ता है। ५ किलोमीटरके रास्तेमें उस समय वही			
अपने उपदेशोंमें वाणीपर संयम रखनेकी प्रेरणा दिय	ग्रा करते	एक आश्रय था। हमलोग उसके नीचे रुके। अन्य राहगीर			
थे। वे कहा करते थे—वाणीसे कभी भी निरर्थक	फ्र शब्द	भी इसकी छायामें रुके थे। थोड़ी देरमें मेरे भाईने पानीकी			
नहीं निकालना चाहिये। कटु—कड़वा शब्द निक	नालकर	फरमाइश की। यहाँ आस-पास पानीका कोई साधन नहीं			
किसीको प्रताड़ित कदापि नहीं करना चाहिये। शब	ब्द ब्रह्म	था। पिताजीने सेहराई चलनेको कहा; लेकिन भाई वहीं			
होता है। एक-एक शब्दका सदुपयोग करना चाहि	हये।	पानीके लिये कहता रहा। उसने रोना प्रारम्भ कर दिया।			
एक बार एक युवा साधुने उनके उपदेशसे प्र	।भावित	पिताजीके साथ ठहरे राहगीरोंने समझाया, लेकिन उसने			
होकर कहा—'बाबा! कुछ साधक मौन धारण क	रते हैं।	रोना बंद नहीं किया। पिताजीने गुस्सेमें मारा भी, लेकिन			
क्या मौनसे लाभ होता है ?' बाबाने कहा—'क्ये	यों नहीं	उसने रोना बन्द नहीं किया। अपनी जिदपर जमा रहा।			
होता। मौनसे वाणीका दुरुपयोग नियन्त्रित हो	ाता है,	इसी समय श्रीशम्भूदयाल विदुआ जो जंगलके ठेकेदार थे,			
उससे अनूठी शक्ति मिलती है।'		साइकिलसे सेहराई जा रहे थे, वे भी वहीं रुके। उन्होंने			
साधुने एक सप्ताहका मौन धारण करनेका र	संकल्प	भाईको समझाया तथा मिठाई खानेको पैसा भी दिया। वह			
ले लिया। उड़िया बाबाके साथ वह गंगातट-	–स्थित	रोना बन्दकर सेहराई चला गया। पिताजीने हम दोनों भाइयोंके			
कुटियामें रहने लगा।		लिये कपड़े खरीदे तथा टेलरको सिलनेके लिये दे दिये।			
एक दिन उड़िया बाबा कर्णवासमें गंगातटप	पर बैठे	अगले सोमवारको जब मैं कपड़े लेने गया और			
भगविच्चन्तनमें लीन थे। अचानक उन्होंने देखा कि	र गंगामें	महुएके पेड़के नीचे रुका तो देखा कि पानीके मटके भरे			
स्नान करनेवाला एक व्यक्ति पैर फिसलनेसे डूबने	लगा।	गाँवकी ही एक महिला पानी पिला रही। हमें बड़ा			
बाबाने यह देखा तो मौन व्रती साधुको संकेतकर व	कहा—	आश्चर्य हुआ, जब पूछा तो बताया कि जबतक बरसात			
'अरे, शोर मचाओ; जिससे खेतमें काम करनेवाले	ने केवट	न हो तबतक शम्भू महाराजने हमें पानी पिलानेको कहा			
भागकर इस डूबतेकी रक्षा करें।' साधु मौन बैठ	ग रहा।	है। यह प्याऊका क्रम १९४२ से १९७२ तक चलता			
बाबा स्वयं खड़े हुए तथा शोर मचाया। एक ना	ाविकने	रहा। प्रतिवर्ष शीतला अष्टमीसे जबतक बरसात न हो			
बह रहे व्यक्तिको गंगाजीमें कूदकर बचा लिया।		तबतक शम्भू महाराजका प्याऊ उस महुएके पेड़के नीचे			
उड़िया बाबाने साधुको समझाया—'मौन	नव्रतका	चलता। इससे १५-२० गाँवके राहगीरोंको बड़ी शान्ति			
यह अर्थ नहीं है कि किसीके प्राण बचते हों त	तब भी	मिलती थी। जब पठारीमें पचमउआ वारनका कुआँ खुदा			
जिह्वाका उपयोग नहीं करे। कोई चोरी करने अ	नाये तो	तबतक यह प्याऊ चलता रहा। उस समयका महुएका			
मौनी बाबा बनकर चुप बैठा रहे। कोई अपराध	हो रहा	छोटा पेड़ अब भारी पेड़ बन गया है, वहाँ अब प्याऊ			
हो तो मूकदर्शक बना देखता रहे।'		नहीं है, लेकिन वह स्थान प्याऊकी गुल्लियाके नामसे			
बाबाने चंद शब्दोंमें ही मौनका महत्त्व बता	दिया।	आज भी विख्यात है, जो शम्भू महाराजके उच्च			
प्रेषक — श्रीशिवकुमार	गोयल	मानवीय दृष्टिकोणका परिचायक है।—मूगालाल मोदी			
	<b>→</b>	<b>&gt;+</b>			

मनन करने योग्य सच्ची कृपा एक बार एक निर्धन ब्राह्मणके मनमें धन पानेकी ही स्थित रहेगी।' उसी समय ब्राह्मणने स्वप्नमें देखा कि तीव्र कामना हुई। वह सकाम यज्ञोंकी विधि जानता था; उसके चारों ओर कफन पड़ा हुआ है। यह देखकर उसके किंतु धन ही नहीं तो यज्ञ कैसे हो ? वह धनकी प्राप्तिके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगा—' मैंने इतने देवताओंकी और अन्तमें कुण्डधार मेघकी भी धनके लिये लिये देवताओंकी पूजा और व्रत करने लगा। कुछ समय एक देवताकी पूजा करता; परंतु उससे कुछ लाभ नहीं आराधना की, किंतु इनमें कोई उदार नहीं दीखता। इस दिखायी पड़ता तो दूसरे देवताकी पूजा करने लगता और प्रकार धनकी आशमें ही लगे हुए जीवन व्यतीत करनेसे पहलेको छोड़ देता। इस प्रकार उसे बहुत दिन बीत गये। क्या लाभ! अब मुझे परलोककी चिन्ता करनी चाहिये।' ब्राह्मण वहाँसे वनमें चला गया। उसने अब तपस्या अन्तमें उसने सोचा—'जिस देवताकी आराधना मनुष्यने कभी न की हो, मैं अब उसीकी उपासना करूँगा। वह करना प्रारम्भ किया। दीर्घकालतक कठोर तपस्या करनेके देवता अवश्य मुझपर शीघ्र प्रसन्न होगा।' कारण उसे अद्भुत सिद्धि प्राप्त हुई। वह स्वयं आश्चर्य करने लगा—'कहाँ तो मैं धनके लिये देवताओंकी पूजा ब्राह्मण यह सोच ही रहा था कि उसे आकाशमें करता था और उसका कोई परिणाम नहीं होता था और कुण्डधार नामक मेघके देवताका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। ब्राह्मणने समझ लिया कि 'मनुष्यने कभी इनकी पूजा न कहाँ अब मैं स्वयं ऐसा हो गया कि किसीको धनी होनेका आशीर्वाद दे दूँ तो वह नि:संदेह धनी हो जायगा!' की होगी। ये बृहदाकार मेघदेवता देवलोकके समीप रहते हैं, अवश्य ये मुझे धन देंगे।' बस, बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे ब्राह्मणका उत्साह बढ़ गया। तपस्यामें ही उसकी ब्राह्मणने उस कुण्डधार मेघकी पूजा प्रारम्भ कर दी। श्रद्धा बढ़ गयी। वह तत्परतापूर्वक तपस्यामें ही लगा रहा। ब्राह्मणकी पूजासे प्रसन्न होकर कुण्डधारने देवताओंकी एक दिन उसके पास वही कुण्डधार मेघ आया। उसने कहा— 'ब्रह्मन्! तपस्याके प्रभावसे आपको दिव्यदृष्टि प्राप्त हो स्तुति की; क्योंकि वह स्वयं तो जलके अतिरिक्त किसीको कुछ दे नहीं सकता था। देवताओंकी प्रेरणासे गयी है। अब आप धनी पुरुषों तथा राजाओंकी गति देख सकते हैं। 'ब्राह्मणने देखा कि धनके कारण गर्वमें आकर लोग यक्षश्रेष्ठ मणिभद्र उसके पास आकर बोले—'कुण्डधार! तम क्या चाहते हो?' नाना प्रकारके पाप करते हैं और घोर नरकोंमें गिरते हैं। कुण्डधार—'यक्षराज! देवता यदि मुझपर प्रसन्न हैं कुण्डधार बोला—'भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करके तो मेरे उपासक इस ब्राह्मणको वे सुखी करें।' आप यदि धन पाते और अन्तमें नरककी यातना भोगते मणिभद्र—'तुम्हारा भक्त यह ब्राह्मण यदि धन तो मुझसे आपको क्या लाभ होता? जीवका लाभ तो चाहता हो तो इसकी इच्छा पूर्ण कर दो। यह जितना कामनाओंका त्याग करके धर्माचरण करनेमें ही है। धन माँगेगा, वह मैं इसे दे दूँगा।' उनपर सच्ची कृपा तो उन्हें धर्ममें लगाना ही है। उन्हें

कुण्डधार—'यक्षराज! मैं इस ब्राह्मणके लिये धनकी धर्ममें लगानेवाला ही उनका सच्चा हितैषी है।' प्रार्थना नहीं करता। मैं चाहता हूँ कि देवताओंकी कृपासे ब्राह्मणने मेघके प्रति कृतज्ञता प्रकट की और यह धर्मपरायण हो जाय। इसकी बुद्धि धर्ममें लगे।' कामनाओंका त्याग करके अन्तमें मुक्त हो गया।

Hindulsm Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY AVINZEN/Sha

# महाशिवरात्रिपर्वपर पाठ-पारायण एवं स्वाध्याय-हेतु प्रमुख प्रकाशन

### 1 मार्च मंगलवारको महाशिवरात्रि पर्व है

श्रीशिवमहापुराण-सटीक, सजिल्द [कोड 2223, 2224] दो खण्डोंमें—इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म श्रीशिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, मिहमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें भगवान् शिवके उपासकोंके लिये यह पुराण संग्रह एवं स्वाध्यायका विषय है। मूल्य ₹650, संक्षिप्त शिवमहापुराण, गुजराती (कोड 1286) मूल्य ₹250, तेलुगु (कोड 975) मूल्य ₹230, बँगला (कोड 1937) मूल्य ₹200, कन्नड़ (कोड 1926) मूल्य ₹200, तिमल (कोड 2043) मूल्य ₹300

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
789	संक्षिप्त श्रीशिवमहापुराण-		1954	शिव-स्मरण	10	1627	<b>रुद्राष्टाध्यायी</b> -सानुवाद	40
	मोटा टाइप	250	1156	एकादश रुद्र (शिव)- चित्रकथा	50	2155	41	40
1468	संक्षिप्त श्रीशिवमहापुराण-		204	<b>ॐ नमः शिवाय</b> चित्रकथा	25	1599	<b>श्रीशिवसहस्र</b> नामावलि	10
	विशिष्ट संस्करण	300	1343	<b>हर हर महादेव</b> चित्रकथा	25	2127	शिव-आराधना—	
2020	<b>शिवमहापुराण</b> -मूलमात्रम्	275	2189	शिवपुराण कथासार	25		पॉकेट साइज (बेड़िआ)	8
1985	<b>लिङ्गमहापुराण</b> -सटीक	250	563	शिवमहिम्नःस्तोत्र	5	2261	श्रीशिवसहस्त्रनामस्तोत्र	
1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर-सानुवाद	40	228	शिवचालीसा-पॉकेट साइज	5		हिन्दी अनुवादसहित	8
1899	श्रावणमास-माहात्म्य 🗤	45	1185	शिवचालीसा-लघु	3	230	अमोघ शिवकवच	5

# चैत्र-नवरात्रके अवसरपर नित्य पाठके लिये 'श्रीरामचरितमानस' के विभिन्न संस्करण

2 अप्रले शानवारसं नवरात्रारम्भ हागा							
कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹		
1389	श्रीरामचरितमानस—बृहदाकार (वि०सं०)	750	82	श्रीरामचरितमानस—मझला साइज, सटीक,			
80	🕠 बृहदाकार-सटीक ( सामान्य संस्करण )	650		[बँगला, गुजराती भी]	150		
1095	,, ग्रन्थाकार-सटीक (वि०सं०) [गुजरातीमें भी]	400	83	<b>,, मूलपाठ,ग्रन्थाकार</b> [गुजराती, ओड़िआ भी]	150		
81	🕠 ग्रन्थाकार-सटीक, सचित्र, मोटा टाइप, [ओड़िआ,		84	י मूल, मझला साइज [गुजराती भी]	85		
	तेलुगु, मराठी, नेपाली, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी भी]	330	85	,, <b>मूल, गुटका</b> [गुजराती भी]	60		
1402	<i>,,</i> ग्रन्थाकार, सटीक	260	1544	🕠 मूल, गुटका ( विशिष्ट संस्करण )	70		
2166	,, ग्रन्थाकार, सटीक, सामान्य संस्करण	230	2234	,, सुन्दरकाण्ड, मूल, बृहदाकार टाइप	70		
1563	🕠 मझला, सटीक ( विशिष्ट संस्करण )	150	2284	,, सुन्दरकाण्ड, मूल, बृहदाकार टाइप [गुजराती]	60		
1436	<table-cell-rows> गृ बृहदाकार, मूलपाठ</table-cell-rows>	350	2151	सचित्र रामरक्षास्तोत्रम्—पुस्तकाकार ( बेड़िआ )	15		
1318	🕠 रोमन एवं अंग्रेजी-अनुवादसहित( मझला भी )	400	सुन्दरकाण्ड सटीक, मूल पाठ कई आकार-प्रकारमें				
		C		212 66			

•
भन्न संस्करण
—सानुवाद, सामान्य टाइप
, ओड़िआ, नेपाली भी] 40
τ 45
थासार 20
एवं विन्थ्येश्वरीचालीसा
र आकार-प्रकारमें



रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57

पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2020-2022

#### LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

# 'कल्याण'के पाठकोंसे नम्र निवेदन

फरवरी माह सन् 2022 ई० का अङ्क आपके समक्ष है। यह अङ्क उन सभी ग्राहकोंको भी भेजा गया है, जिनको सन् 2022 ई० का विशेषाङ्क 'कृपानुभूति–अङ्क' वी०पी०पी० द्वारा भेजा गया है, लेकिन उसका भुगतान हमें प्राप्त नहीं हो पाया है। जिन ग्राहकोंको वी०पी०पी० किसी कारणसे वापस हो गयी है, वे सदस्यता–शुल्क भेजकर रिजस्ट्रीसे अथवा वी०पी०पी० से भी पुन: मँगवा सकते हैं। जिन ग्राहकोंको सदस्यता–शुल्क भेजनेके उपरान्त भी किसी कारण वी०पी०पी०से अङ्क प्राप्त हो गया है, उनसे अनुरोध है कि वे किसी अन्य व्यक्तिको वह अङ्क देकर ग्राहक बना दें और उनका नाम, पूरा पता, मोबाइल नम्बर तथा अपनी ग्राहक–संख्या आदिका विवरण हमें भेज दें, जिससे उन्हें नियमित ग्राहक बनाकर भविष्यमें 'कल्याण' सीधे उनके प्रतेपर भेजा जा सके। यदि नया ग्राहक बनाना सम्भव न हो तो पूर्व जमा रकमकी वापसी या समायोजन–हेतु e-mail: kalyan@gitapress.org/ 09235400242/244/8188054404 पर सम्पर्क करना चाहिये। इसके अतिरिक्त 'कल्याण' के विषयमें किसी भी जानकारीके लिये 9648916010 पर SMS एवं WhatsApp भी कर सकते हैं।

वार्षिक-शुल्क—₹ 250, पंचवर्षीय-शुल्क—₹ 1250, शेष 11 मासिक-अङ्क राजिस्ट्रीसे भेजनेके लिये ₹200 अतिरिक्त। सदस्यता-शुल्क —व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुरको भेजें। Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें।

		महाभारत सटीक	उपलब्ध 💮				
कोड	खण्ड	विवरण	मूल्य ₹	कोड	खण्ड	विवरण	मूल्य ₹
32	प्रथम खण्ड	आदिपर्वसे सभापर्वतक।	450	35	चतुर्थ खण्ड	द्रोणपर्वसे स्त्रीपर्वतक।	450
33	द्वितीय खण्ड	वनपर्वसे विराटपर्वतक।	450	36	पञ्चम खण्ड	शान्तिपर्व।	450
34	तृतीय खण्ड	उद्योगपर्वसे भीष्मपर्वतक।	450	37	षष्ठ खण्ड	अनुशासनपर्वसे	
728	महाभारत-सट	<b>ीक</b> (छ: खण्डोंमें) <b>मूल्य</b> र	₹ 2700			स्वर्गारोहणपर्वतक।	450

सभी खण्ड एक साथ मँगवानेपर डाकखर्च ₹ 450, एवं प्रत्येक खण्ड अलग-अलग मँगवानेपर ₹ 90 देय होगा।

# योग एवं आरोग्यपर तीन प्रमुख प्रकाशन—अब उपलब्ध

पातञ्जलयोग-प्रदीप (कोड 47) ग्रन्थाकार—श्रद्धेय श्रीओमानन्द महाराजद्वारा प्रणीत इस ग्रन्थमें पातञ्जलयोग-सूत्रोंकी व्याख्या तत्त्ववैशारदी, भोजवृत्ति तथा योगवार्तिकके अनुसार विस्तृत रूपसे की गयी है। इसमें उपनिषदों तथा भारतीय दर्शनोंके विभिन्न तत्त्वोंकी सुन्दर समालोचना है। मुल्य ₹ 225

योगाङ्क (कोड 616) ग्रन्थाकार—इसमें योगकी व्याख्या तथा योगका स्वरूप-परिचय एवं प्रकार और योग-प्रणालियों तथा अङ्ग-उपाङ्गोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त इसमें अनेक योगसिद्ध महात्माओं और योग-साधकोंके जीवन-चरित्रका वर्णन है। मृल्य ₹ 330

आरोग्य-अङ्क [ संवर्धित संस्करण ] ( कोड 1592 ) ग्रन्थाकार—विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियों, घरेलू औषियों तथा स्वास्थ्यरक्षापर संगृहीत अनेक उपयोगी लेखोंका संग्रह है। मूल्य ₹ 260

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें। gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें। कृरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005

book.gitapress.org/gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)